लोकभाषा संवर्धन में नाथपंथ का योगदान

■ डॉ. प्रदीप कुमार राव

लोकभाषा संवर्धन में नाथपंथ का योगदान

: संपादक :

डॉ. प्रदीप कुमार राव

: सह–संपादक :

डॉ. अविनाश प्रताप सिंह

डॉ. आरती सिंह

सुबोध कुमार मिश्र

डॉ. अभिषेक सिंह

डॉ. अजय कुमार सिंह

: प्रकाशक :

गुरु श्री गोरक्षनाथ शोध एवं अध्ययन केन्द्र

महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

ISBN- 978-81-929457-2-6

प्रकाशक :
गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधा एवं अध्ययन केन्द्र
महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज
जंगल धूसड़, गोरखपुर
उत्तर प्रदेश–273014, भारत
ई–मेल : mpmpg5@gmail.com

सर्वाधिकार
सुरक्षित

संस्करण
प्रथम, मकर संक्रान्ति 2019 ई.

मूल्य
50 रुपये

मुद्रक
मोती पेपर कनवर्टर्स
गोरखपुर

Lokbhasha Samvardhan me Nath Panth ka Yogdan
Edt. by Dr. Pradeep Kumar Rao

सम्पादकीय ...

भारत के सामाजिक–धार्मिक इतिहास में नाथपंथ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक संस्कृति में आयी विकृतियों को रेखांकित करते हुए महात्मा बुद्ध ने मूल वैदिक संस्कृति को नवजीवन प्रदान किया। महात्मा बुद्ध के अनुयायियों ने वैदिक संस्कृति के इस शुद्धिकरण के प्रयत्न को बौद्ध–धर्म का नाम दिया। किन्तु लगभग एक हजार वर्ष बीतते–बीतते बौद्धधर्म भी सामाजिक–धार्मिक विकृतियों एवं पाखण्डों का शिकार हो गया। कापालिकों–वामाचारियों की साधना पद्धतियाँ भारतीय संस्कृति को एक बार फिर दूषित करने लगी। छठवीं–सातवीं शताब्दी ईस्वी के आस–पास भारतीय समाज में पुनः धार्मिक क्रान्ति की भूमि तैयार हो चुकी थी। इसी परिदृश्य में आदि शंकराचार्य एवं महायोगी गुरू श्रीगोरक्षनाथ का अभ्युदय हुआ। महायोगी गुरू श्री गोरखनाथ ने आदिनाथ अर्थात भगवान शिव के उपदेशामृत से योगी मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित लोक–जीवन में व्याप्त नाथपंथ का पुनर्गठन किया, उसे युगानुकूल विकसित किया और एक ऐसे धार्मिक–आन्दोलन को जन्म दिया जिसने भारतीय धर्म एवं संस्कृति को एक नयी दिशा प्रदान की। इसी धार्मिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि में मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का जन्म हुआ। धर्म–अध्यात्म के इस नए युग ने भक्ति–साहित्य के रूप में भारतीय भाषाओं यथा लोकभाषाओं को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

महायोगी गुरू श्री गोरखनाथ एवं उनके द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ के योगियों ने लोक–जीवन, लोक–संस्कृति एवं लोकभाषा को अनवरत समृद्ध किया। महायोगी गुरू श्री गोरक्षनाथ की रचनाएँ संस्कृत, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, खड़ी बोली अर्थात् हिन्दी इत्यादि भाषाओं/लोकभाषाओं में प्राप्त होती हैं। इसी क्रम में सिद्धसाहित्य एवं नाथ साहित्य की एक लम्बी परम्परा मिलती है। इसी साहित्य परम्परा से सन्त–साहित्य को प्रेरणा मिली। उदाहरणार्थ गोरखनाथ एवं सरहपाद का हठयोग कबीर की रचनाओं में मिलता है। नाथ योगियों के दोहा और पदशैली को बाद के सभी हिन्दी कवियों ने अपनाया।

वस्तुतः नाथपंथी साहित्य और उसकी भाषा ही भारतीय भाषाओं के विकास की आधार–शिला बनी। विशेषकर लोकभाषा के संवर्धन में नाथपंथ के सिद्धों–योगियों द्वारा वाचिक–लिखित लोक–साहित्य का अप्रतिम योगदान है। दुर्भाग्य से इस दिशा में शोध–परक अध्ययन बहुत ही कम हुए। कुछ विद्वानों द्वारा थोड़ा–बहुत कार्य हुआ भी तो वे भाषा के इतिहास में स्थान नहीं पा सके। अतः 'लोकभाषा के संवर्धन में नाथपंथ का योगदान' विषयक संगोष्ठी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोध एवं अध्ययन केन्द्र, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज जंगल धूसड़ तथा हिन्दी विभाग द्वारा 22–23 अक्टूबर, 2018 ई. को आयोजित की गई। उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान लखनऊ द्वारा प्राप्त आर्थिक एवं अकादमिक सहयोग से सम्पन्न

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत किए गए महत्त्वपूर्ण और प्रसंशित शोध-पत्रों के प्रकाशन का सुझाव सभी विद्वानों द्वारा दिया गया। लोकभाषा के संवर्धन में नाथपंथ के योगदान विषय पर प्रकाशित साहित्य के अभाव को यह पुस्तक पूर्ण करेगी।

विद्वानों द्वारा अथक परिश्रम से तैयार शोध-पत्र अथवा आलेख के आधार पर यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मैं इस पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों अथवा आलेख के लिए सभी विद्वानों का हार्दिक आभारी हूँ। इस पुस्तक के प्रकाशन में सम्पादक मण्डल एवं उन सभी विद्वानों तथा नाथपंथ प्रेमियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सुझाव एवं प्रेरणा से यह प्रकाशन सम्भव हो सका है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक नाथपंथ पर शोध करने वाले शोधार्थियों के साथ-साथ नाथपंथ के अनुरागी विद्वानों एवं भक्तों की ज्ञान-पिपाशा को भी तृप्त करेगी।

मकर संक्रान्ति, 2019 ई. **प्रदीप कुमार राव**

लोकभाषा संवर्धन में नाथपंथ का योगदान

विषय-सूची

विषय वस्तु **पृष्ठ सं.**

1. गोरखनाथ का चिन्तन एवं भाषिक संरचना
   प्रो. रामकिशोर शर्मा 1
2. लोकभाषा के संवर्धन में नाथपंथ का योगदान
   डॉ. कन्हैया सिंह एवं डॉ. प्रदीप कुमार राव 13
3. महायोगी गुरु गोरखनाथ और भोजपुरी
   डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त 18
4. लोकभाषा एवं नाथपंथ
   अनुज प्रताप सिंह 30
5. लोकभाषा में नाथपंथ
   रवीन्द्र श्रीवास्तव 'जुगानी भाई' एवं डॉ. अविनाश प्रताप सिंह 41
6. नाथपंथी सिद्धों का लोकप्रभाव
   डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी 46
7. भोजपुरी आ नाथपंथ
   डॉ. रवीन्द्र कुमार 'शाहाबादी' 52
8. लोकभाषा एवं जन-शिक्षा के संवर्धन में नाथ सम्प्रदाय की भूमिका
   राजकुमार 60
9. लोकभाषा संवर्धन में नाथपंथ का योगदान
   ध्रुति श्रीवास्तव 65

10. नाथपंथ–साहित्यिक सिंहावलोकन

डॉ. भानु प्रताप सिंह 72

11. नाथ सम्प्रदाय : उद्भव और विकास

सुबोध कुमार मिश्र एवं डॉ. अजय कुमार सिंह 77

12. नवनाथ एवं चौरासी सिद्ध

पद्मजा सिंह एवं डॉ. अभिषेक सिंह 87

गोरखनाथ का चिन्तन एवं भाषिक संरचना

प्रो. रामकिशोर शर्मा*

भारतीय धर्म-साधना में अपनी विलक्षण साधना-पद्धति तथा व्यक्तित्व से क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले महायोगी गोरखनाथ ने योग की पूर्ववर्ती परम्परा को युगानुकूल नूतनता प्रदान की और धर्म की शुचिता तथा मर्यादा को प्रतिष्ठित किया। योग-साधना के विविध सम्प्रदायों को समन्वित एवं सार्थक बनाने का श्रेय गोरखनाथ को है। इनके द्वारा संघटित योग मार्ग को नाथयोग कहते हैं। गोरखनाथ के विचारों का प्रभाव लगभग सम्पूर्ण भारत में रहा है। जब किसी साधक की व्यापक लोकप्रियता होती है तो उसके अनुयायी उसके विचारों में कुछ नया जोड़कर उसकी रचनात्मकता को एक ओर विस्तार देते हैं दूसरी ओर उसकी मौलिक कृतियों के विषय में सन्देह भी पैदा करते हैं। गोरखनाथ द्वारा रचित मानी जानेवाली लगभग 80 से अधिक संस्कृत एवं हिन्दी की रचनाओं का उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त ग्रन्थों में संस्कृत भाषा में निबद्ध रचनाओं को हिन्दी भाषा की रचनाओं की तुलना में अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

गोरखनाथ द्वारा रचित संस्कृत ग्रन्थों में नाथ मत के सिद्धान्तों तथा विचारों का अधिक व्यवस्थित तथा प्रामाणिक विवेचन है। लोकभाषा हिन्दी में ज्यादातर साधना के व्यवहारिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। गोरखनाथ का चिन्तन दार्शनिक आचार्यों की तरह तर्काश्रित न होकर समाधि की उच्च अवस्था में अनुभूत सत्य है। यह सत्य वाद-विवाद तथा तर्क से परे है। उनका मानना है कि परब्रह्म का ठीक-ठीक प्रवचन न वेद कर पाये हैं, न धार्मिक पुस्तकें-पुराण-कुरानादि; चारों प्रकार की वाणी - परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी - के द्वारा भी उसका वर्णन सम्भव नहीं है। भाषा के द्वारा वह परमतत्त्व उद्‌भासित कम होता है आच्छादित अधिक होता है। समाधि द्वारा जो शब्द-प्रकाश होता है, उसी से विज्ञान रूप अलक्ष्य को प्रत्यक्ष किया जा सकता है-

बेद कतेब न षांणी बांणी। सबं ढंकी तणि आंणी।
गगन सिषर महिं सबद प्रकास्या। तहं बूझै अलष विनांणी।

*408 ए/15 जी, वक्शी खुर्द, इलाहाबाद - 211006; मो. 9956003743

'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' के आधार पर अक्षय कुमार बनर्जी ने गोरखनाथ के चिन्तन एवं विचारों का विवेचन 'गोरख दर्शन' नामक पुस्तक में किया है। गोरखनाथ ने पूर्व सिद्ध योगियों की तरह निरपेक्ष चेतना को पराशक्ति कहकर सम्बोधित किया है। 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' से उद्धृत एक श्लोक है-

न ब्रह्मा विष्णु-रुद्रौः न सुरपति-सुराः नैव पृथ्वी न चापा।
नैवाग्निर्नापि वायु नं च गगनतलम् नो दिशो नैव कालः।
नो वेदा नैव यज्ञान च रवि-शशिनौ नो विधिर्नैव कल्पाः
स्वः-ज्योतिः सत्यम् एकम् जयति तव पद्म सच्चिदानन्द-मूर्तेः।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवता पृथ्वी, जल, वेद, यज्ञ, सूर्य-चन्द्रमा, नियमादि जहाँ अनुपस्थित हैं वहाँ तुम स्वयं को पूर्ण शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप में प्रकट करते हो वहाँ केवल तुम्हारा आत्मरूप एकमेव आत्मप्रकाशयुक्त चरम सत्ता के रूप में चमकता है। ('गोरखदर्शन'-अक्षय कुमार बनर्जी, पृ. 36)। चरम सत्ता का निर्वचन उपनिषदों की तरह निषेधात्मक अधिक है। इतना निश्चित है कि वह अस्तित्ववान है परन्तु लौकिक व्यवहार के भाषाई दायरे में उसे समाहित नहीं किया जा सकता है। वह सत्, चैतन्य तथा आनन्दस्वरूप है।

'अमनस्क' पुस्तक में गोरखनाथ निर्दिष्ट करते हैं कि-

भावाभाव विनिर्युक्तं नाशोत्पत्ति विवर्जितम्।
सर्व कल्पनातीतं पर-ब्रह्म तदुच्यते।।

परमब्रह्म भाव-अभाव से रहित है, नाश एवं उत्पत्ति से विवर्जित है, सभी कल्पनाओं से परे है। शिव, परमात्मा, परमेश्वर भी उस नाम रहित के नाम सुझाये गये हैं। इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि परमतत्त्व का जो भी नामकरण किया जाए, इस धारणा को बनाये रखा जाये कि वह किसी नाम में अँटनेवाली सत्ता नहीं है गोरखबानी में अपेक्षाकृत अधिक सरल तरीके से इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है-

बस्ती न सून्यं सून्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन-सिषर महि बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा। (सबदी-1)

उसे न तो बसा हुआ किसी स्थान विशेष स्थूल ढंग से उपस्थित या शून्य दोनों ही नहीं कह सकते हैं। शून्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है- 'अस्ति, नास्ति, न अस्ति, न नास्ति' - है, नहीं है, न है, न नहीं है। पूरे ब्रह्माण्ड में तथा पिण्ड के ब्रह्मरन्ध्र में वह निष्कलुष बालक की तरह बोल रहा है किन्तु उसका क्या नाम रखा जाए। नाथ सम्प्रदाय में शिव और शक्ति दोनों की समान

महिमा है। इससे सिद्ध होता है कि पुरुष तथा नारी सत्ता दोनों की श्रेष्ठता उन्हें मान्य है। परमात्मा शिव और सर्व जन्मदात्री शक्ति का गोरखनाथ ने अनेक रूपों में वर्णन किया है। उनके अनुसार शक्ति शिव में निहित है, शिव शक्ति में निहित है। दोनों का सम्बन्ध चन्द्र और चन्द्रिका की तरह है। शिव के पारमार्थिक स्वरूप में निहित शक्ति एक अनन्त और शाश्वत रूप में सक्रिय ऊर्जा है। यह क्रमिक सृष्टि निर्माण और प्रलय के रूप में शिव की आत्माभिव्यक्ति है। शिव को शक्ति आत्मा कहा जा सकता है और शक्ति को शिव का शरीर। शक्ति के कारण ही शिव शक्तिमान, सर्वज्ञानी, सर्वानन्द, सगुण परमेश्वर जगत् का सृजक, पालक और भोक्ता बनता है। तात्त्विक रूप में शिव पूर्ण आनन्दमय, अभेद, अपरिवर्तनीय रहते हुए भी अपने को विभिन्न रूपों में प्रकट करते हैं और भोगते हैं। शिव और शक्ति मूलतः अभिन्न हैं।

यह जगत् जो मानव मात्र के आकर्षण का केन्द्र है मनुष्य इसके प्रति इतना मोहग्रस्त रहता है कि लाख दुखों के बावजूद इससे अलग नहीं होना चाहता। ईश्वर की इस विचित्र रचना को शंकराचार्य ने मिथ्या कहा है। गोरखनाथ तथा सिद्ध योगी इस संसार को मिथ्या या भ्रम अथवा विषयगत सत्ता मात्र कहकर इसकी अवहेलना नहीं करते हैं क्योंकि चरम सत्ता स्वयं को नाना-रूपात्मक जगत् व्यवस्था के रूप में प्रकट करती है। वही सीमित व्यावहारिक अस्तित्वों को विकसित, पोषित और नष्ट करती है। इसके अन्तर्गत वैयक्तिक संज्ञाओं में वह सत्ता अपिरवर्तनीय स्वप्रकाशित आत्मा-स्वरूप चमकती रहती है। गोरखनाथ की दृष्टि में जगत् उत्पत्ति के पूर्व अव्यक्त रूप में तथा उपादान कारण में उपस्थित रहता है। इस तरह सृष्टि के अनन्तर प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि क्रम चलता रहता है। महामाया या योगमाया का आत्मप्रकटीकरण पाँच अवस्थाओं में होता है- मूल रूप में निजाशक्ति, शिव से अभिन्न है। दूसरी पराशक्ति अवस्था तीव्र आन्तरिक प्रेरणा लेकर उद्‌बुद्ध होने की है। तीसरे स्तर पर अनन्त पारमार्थिक अन्तःकरण में हलचल होती है। इस सक्रिय शक्ति को अपरा शक्ति कहा गया है। चौथी अवस्था में शिव की सक्रिय चेतना में एक शुद्ध 'अहं' का भाव प्रकट होता है। इसे सूक्ष्म शक्ति कहा गया है। पाँचवीं अवस्था में शिव की दिव्य शक्ति एक विशिष्ट मानसिक शक्ति-रूप ज्ञान, अनुभव की प्रक्रियाएँ करने के लिए जो रूप धारण करती है वही कुण्डलिनी शक्ति है।

कुण्डलिनी शक्ति के पाँच गुण हैं- पूर्णता, प्रतिबिम्बिता, प्रबलता, प्रोच्छलता, प्रत्यङ्मुखता। पूर्णता का तात्पर्य है प्रकटीकरण तथा आत्मरूपान्तर की सम्भावना। कुण्डलिनी काल-दिक्‌युक्त ब्रह्माण्ड को अवस्थित रखती है। सृष्टि प्रक्रिया का वह बीज है। वह ऐसा दर्पण है जिसमें शिव का भौतिक, जैविक, मानसिक सभी रूप प्रतिबिम्बित होता है। प्रबलता का तात्पर्य है अनेक अस्तित्वों का अपने भीतर सृजन, पालन, नियमन तथा पुनः अपने भीतर समेटने की शक्तिमत्ता। प्रोच्छलता का तात्पर्य है उसका आत्मरूपान्तरण, प्रसारण तथा आत्मसमायोजन का छिपा गुण। प्रत्यङ्मुखता का

तात्पर्य सृजन, पालन तथा विनाश करते हुए भी उसका आनन सदा परमात्मा शिव की ओर उन्मुख रहता है। इसीलिए उसकी सभी सन्तानें सर्वदा शिव के मिलन की अभीप्सा रखती हैं। सभी चेतन-अचेतन शिव के आनन्ददायक एकत्व की ओर प्रगति करती रहती हैं। वस्तुतः शिव ही प्रत्येक जीव एवं सृष्टि की आत्मा है।

प्रकृति शिव या ब्रह्म की निहित शक्ति का एक अंग है, शिव के अस्तित्व से भिन्न उसका कोई अस्तित्व नहीं है। प्रकृति का विकास शिव का आत्मोन्मीलन है। अतः वह आध्यात्मिक सत्ता है। गोरखनाथ मानते हैं कि प्रत्येक मुक्त पुरुष ईश्वर से या शिव से प्रकृति या शक्ति को अपने से अभिन्न अनुभव करने लगता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड असंख्य प्रकार के पिण्डों से युक्त एक पिण्ड है। एक विराट समष्टि पिण्ड में असंख्य व्यष्टि पिण्ड समाहित हैं। शून्य का तात्पर्य 'स्व-सत्ता-मात्र' है। यह दिव्य चेतना एक शुद्ध शून्य पृष्ठभूमि के रूप में रहती है। यह शक्ति के अपराशक्ति के रूप में आत्मोद्घाटन की स्थिति की ओर संकेत करता है।

नाथ योगी जिस 'अलख निरंजन' की पुकार करता है, वह कोई बाह्य सत्ता नहीं है। गोरखनाथ के अनुसार यह स्वसाक्षात्कार मात्र है। अपनी शक्ति से विशिष्ट और उसका अतिक्रमण करनेवाला परमात्मा है। अनादि पिण्ड के पाँच अन्य गौरवशाली प्रकटीकरण हैं- परमानन्द, प्रबोध, चिद् उदय, प्रकाश और सोऽहम् भाव। आद्य पिण्ड से महाकाश, महाकाश से महावायु, महावायु से महातेजस्, महातेजस् से महासलिल, महासलिल से महापृथ्वी; ब्रह्माण्ड शरीर से प्राकृतिक जगत् या जड़ जगत्, प्राण जगत्, मनोजगत्, उच्चतर मनस जगत्, धर्मजगत् विकसित होते हैं। भौतिक शरीरों को जीवन (प्राण) सजीव एवं व्यवस्थित करके विशिष्ट लक्षण प्रदान करता है। जीवित शरीरों का उद्देश्य द्वारा शासित होता है। जैविक शरीर प्राकृतिक नियमों से अनुशासित होते हुए भी उनसे अधिक शक्तिशाली होते हैं तथा प्राकृतिक नियमों पर शासन करते हैं। जब जीवन (प्राणि शरीर) प्राकृतिक शक्तियों की तुलना में कमजोर होती है तभी भौतिक शरीर हो जाता है उसी को मृत्यु कहते हैं। प्राण शरीर में दिव्य शक्ति मुद्गल (भौतिक पदार्थ) की तुलना में अधिक सबल रहती है। मनोजगत् (मनस) के स्वभाव में व्यावहारिक चेतना रहती है। भाव संवेदन इसी में है। जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति इसकी तीन दशाएँ हैं। मनस यद्यपि शरीर और प्राण से सम्बन्धित है तथापि यह उनका अतिक्रमण कर जाता है। देहान्त के बाद भी यह मरता नहीं, दूसरी देह में प्रवेश करता है। यही नहीं योगी अनेक भौतिक शरीरों को निर्मित कर उन्हें आत्माभिव्यक्ति का साधन बना सकता है। बुद्धि और तर्क ब्रह्माण्ड शरीर का उच्चतर मनस है। यह मनस के कार्यों को उचित-अनुचित के विवेक से नियोजित करता है। इसी के द्वारा मनस में सत्य-असत्य का भेद पैदा होता है। शिव के विराट शरीर में हम धर्मजगत् अर्थात् नैतिकता, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, आदर्श-यथार्थ का अनुभव करते हैं। शिव-शक्ति की विचारशील आत्माभिव्यक्ति के रूप में मानव एक सापेक्षिक अनुबद्ध स्वातंत्र्य, इच्छा,

स्वातंत्र्य, विचार स्वातंत्र्य, इन्द्रियों तथा बुद्धि को नियंत्रित त कर अपना स्वामी हो सकता है। स्वतंत्रता आत्मा के मौलिक स्वरूप में निहित है। जड़ जगत् में यह स्वतंत्रता अव्यक्त है। शिव-शक्ति के विराट शरीर में एक रस जगत् मौजूद है। शुद्ध सौन्दर्य चेतना विनाश में भी उतना ही सौन्दर्य पाती है जितना सृजन में, यहाँ रस स्वयं अनेक रूपों में व्यक्त है। शिव-शक्ति का सातवाँ महाकार पिण्ड आनन्द का है।

व्यष्टि पिण्ड (वैयक्तिक शरीर) का समष्टि पिण्ड से समरसकरण निज आत्मा और सृष्टि में एक ही रस, अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार सिद्ध योगी सम्प्रदाय का महान आदर्श है। गोरखनाथ ने गहन चिन्तन द्वारा जिन धारणाओं को प्रकाशित किया है वे मनोवैज्ञानिक और आकर्षक हैं। जनसाध ारण में उनके विचारों का जो पक्ष प्रचारित-प्रसारित हुआ है वह लोकभाषा में वर्णित योग की जटिल साधना प्रणालियाँ हैं जिनसे जनता को चमत्कृत करने का उपक्रम उनके शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा विशेष रूप से किया गया। उनके कतिपय विचार आधुनिक युग के पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों तथा आस्तिक अस्तित्ववादी दर्शन से साम्य रखते हैं। भौतिक जगत् के प्रति सम्पूर्ण विश्व-मानव की गहरी संसक्ति है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक युग में जगत् के मिथ्यात्व की अवधारणा कम लोगों को मान्य हो सकती है। प्रकृति, प्राणि-समाज, मनस-तत्त्व, बुद्धि-तत्त्व, नैतिक बोध तथा स्वातंत्र्य-बोध को शिव-शक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ मानकर उनकी अपने स्तर की मान्यता तथा महत्ता को सुदृढ़ किया गया है। ये विचार आज के सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

शिव स्वयं आठ दिव्य ब्रह्माण्ड व्यक्तियों के रूप में प्रकट होते हैं। ये महासाकार पिण्ड की अष्टमूर्तियाँ हैं। शिव स्वयं प्रथम मूर्ति हैं जिनका स्वप्रकाशित चैतन्य सबसे परे है। भैरव दूसरा ब्रह्माण्ड देवता है, यह पूर्ण आध्यात्मिकता तथा आनन्दमयता में विराजते हैं। इन्हें योग और ज्ञान का पूर्ण आदर्श माना जाता है, ये योगियों के आदर्श हैं। भैरव से विकसित तीसरे देवता श्रीकण्ठ हैं। ये सर्वदा सौन्दर्य तथा रस जगत् में निवास करते हैं। संगीत, कवित्व, चित्र, नृत्य आदि कलाओं के अधिष्ठाता श्रीकण्ठ हैं। ये रसेश्वर हैं। चौथे ब्रह्माण्ड देवता सदाशिव श्रीकण्ठ से विकसित हैं। ये नैतिक आदर्शों के संस्थापक एवं स्वामी हैं। शुभ-अशुभ, पाप, घृणा, क्रोध आदि इनकी चेतना में सुव्यवस्थित हैं, लोगों की त्रुटियों को यह क्रीड़क भाव से देखते हैं। सद्भावों की प्रेरणा के लिए इनकी उपासना की जाती है। पाँचवीं दिव्य मूर्ति को ईश्वर कहते हैं; यह तार्किक एवं बौद्धिक चेतना की पूर्णता का प्रतिनिधित्व करता है। इनके लिए ब्रह्माण्ड व्यवस्था भव्य तार्किक व्यवस्था है। ये सत्यान्वेषियों के प्रेरणास्रोत हैं, ये सर्वज्ञ गुरु हैं। समस्त ज्ञान-विज्ञान साहित्य की शाखाएँ इनकी कृपा से विकसित हैं। छठें दिव्य व्यक्तित्व हैं रुद्र, ये ईश्वर से विकसित हैं। ये सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञाता हैं। ये ज्ञान, बल, प्रतिभा प्रदान करनेवाले देवता हैं। सातवें दिव्य देवता हैं विष्णु, ये सृष्टि के व्यापक प्राण-शक्ति हैं। ये प्राण-जगत् के आत्मा एवं स्वामी हैं, शिव के ब्रह्माण्ड शरीर की आठवीं दिव्य मूर्ति ब्रह्मा हैं। ये

आध्यात्मिक, सौन्दर्यात्मक, मनस, बुद्धि नाना प्रकार के भौतिक शरीरों को प्रदान करनेवाले हैं। उच्चर चरमसत्ता के क्रमशः निम्नतर तथा नाना-रूपात्मक प्रापंचिक जगत् के रूपान्तर का ही यह क्रम है। इस प्रकार अवतरण और उन्नयन की प्रक्रिया ब्रह्माण्ड व्यवस्था में प्राप्त होती है।

गोरखनाथ तथा पूरे सम्प्रदाय में मानव शरीर की संरचना पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है क्योंकि पिण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यक्त होता है। योगियों के लिए यही साधना का केन्द्र है। मानव शरीर में भौतिक, जैविक, मानसिक तथा बौद्धिक अंग समानुपात में व्यवस्थित हैं; ये परस्पर एक दूसरे का सहयोग करते हैं। मानव शरीर शिव-शक्ति की ब्रह्माण्ड शरीर का लघु रूप है। मनुष्य अपने विकसित व्यक्तित्व के द्वारा परमात्मा शिव का अनुभव सृष्टि की वास्तविक आत्मा के रूप में कर सकता है। शिव अनन्त रूपों में अपने को प्रकट करके आनन्दमयी लीला करता है। प्रत्येक व्यष्टिगत जीव शिव-शक्ति का अवतार है। विकास की ब्रह्माण्ड प्रक्रिया में मनस पहले है फिर प्राण तथा देह है किन्तु व्यष्टिगत अस्तित्व में देह, प्राण, मनस का क्रम है। मनस धीरे-धीरे व्यष्टि शरीर में अपने को प्रकट करता है। अन्तःकरण या मनस मूलतः एक है किन्तु उसके पाँच नाम हैं- मनस, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चैतन्य। ये पाँच मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में व्यक्त होते हैं-

मनस - संकल्प, वैराग्य, मूर्च्छा, जड़ता, मनन

बुद्धि - विवेक, वैराग्य, शान्ति, सन्तोष, क्षमा

अहंकार - अभिमान, मरियम (अपनत्व का भाव) मम सुख, मम दुख, मम इदम्

चित्त - मति, धृति, स्मृति, त्याग, स्वीकार

चैतन्य - विमर्श, शीलन, धैर्य, चिन्तन, निस्पृहत्व

योगियों की साधना में कुल का विशेष महत्व है- सत्व, रज, तमस, काल और जीव। सत्व में दया, धर्म, क्रिया और भक्ति की अभिव्यक्ति होती है। रजस् में स्फूर्ति, साहस, आत्मगौरव, तमस् में विवाद, कलह, शोक, वध, वंचन आदि बुरे लक्षण। काल का प्रभाव कल्पना, भ्रान्ति, प्रमाद तथा अनर्थ में प्रकट होता है। शरीर की प्रगति, जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल दशाएँ काल पर निर्भर हैं।

जीव विभिन्न परिवर्तनों में एकता-तद्रूपता को स्थिर करता है। ये अवस्थाएँ हैं जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत। सत्, रजस्, तमस्, काल अदृश्य नियामक शक्तियाँ हैं। गोरखनाथ के अनुसार व्यष्टि मनस की अभिव्यक्तियाँ जो पाँच तरह की हैं- इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृति और वाक्। व्यक्ति के पाँचवें स्तर वाक् पर थोड़ा विचार की आवश्यकता है। इसके पाँच स्तर हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी और मात्रिका। परा चेतना में प्रेरणा या इच्छा के रूप में विद्यमान रहती है। इस अवस्था में वाक् और चित्त में कोई भेद नहीं होता। पश्यन्ती सूक्ष्म विचारों के रूप में प्रकट होती है। वाक् का यह आदर्शात्मक रूप चेतना में व्यक्त होता है, स्थूल शरीर में नहीं। मध्यमा

में यह व्याकृत होती है। मानसिक भाषण तथा मौखिक भाषण के बीच इसका स्थान है। वैखरी मौखिक इन्द्रियों के प्रयासों द्वारा उच्चरित तथा सुनाई देनेवाली वाणी है। मात्रिका उसे कहा जाता है जिससे जगत् के समस्त प्रकार के शब्द और वाक्य विकसित हुए। प्रत्येक अक्षर शिव-शक्ति का विशिष्ट ध्वनि शरीर है और सजीव भौतिक शरीर के अन्तर्गत किसी विशिष्ट केन्द्र से सम्बन्धित या व्यक्त होता है। प्रत्येक अक्षर प्राण-शक्ति और आध्यात्मिक तात्पर्य से परिपूर्ण होता है।

पिण्डस्थ नाड़ियों का भी विशेष महत्त्व है। नाड़ियाँ असंख्य हैं किन्तु उनमें तीन प्रमुख हैं- इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। नाड़ियों का स्रोत है 'मूलकन्द'। मस्तिष्क के ऊपरी भाग में सहस्रार चक्र है। इसी में तर्क, नैतिक चेतना व तत्त्व ज्ञानालोकित मनस प्रकट होते हैं। रीढ़ को ब्रह्मदण्ड या मेरुदण्ड कहते हैं। मेरुदण्ड से सुषुम्ना ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। प्राणशक्ति या जागृत कुण्डलिनी इसी मार्ग से ऊपर उठती है और सहस्रार में स्थित शिव से मिल जाती है। इड़ा बाएँ नासा पुट तथा पिंगला दाएँ नासा पुट से जुड़ी है। प्राणायाम इन्हीं नाड़ियों से होता है। प्राण वायु विभिन्न भागों में विभिन्न कार्य करती है। अपान वायु निचले भागों में सक्रिय रहती है।

'समान' वायु का स्थान नाभि है। 'व्यान' शरीर के समस्त भागों में व्याप्त रहती है। 'उदान' का क्षेत्र कण्ठ में है। प्रत्येक श्वास के तीन स्तर हैं- पूरक, कुम्भक और रेचक। प्रत्येक रेचक में 'हं' तथा पूरक में 'स:' की ध्वनि होती है। प्रत्येक प्राणी स्वाभाविक रीति से 'हंस:' का जाप करता है। 'हं' मैं तथा 'स:' विश्वात्मा शिव। प्रत्येक पूरक में शिव शरीर में प्रवेश करता है। स्वयं को अहम् 'जीवात्मा' के रूप में व्यक्त करता है। यही लय 'सोऽहम्' है। दिन-रात में यह 21600 बार जप हो जाता है। यह अजपा गायत्री है। गोरखनाथ 'प्रणव' को अनाहत नाद कहते हैं। यह ब्रह्माण्ड में समाया है। सभी विशिष्ट ध्वनियाँ इसी से विकसित हैं। जब तीनों नाड़ियाँ मिलती हैं तब अनाहत नाद सुनाई देता है। गोरखनाथ कहते हैं-

नव चक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यम् व्योमपंचकम्।
सम्यग्मेतत् न जानाति स योगी नाम धारकः॥

नवचक्र-

मूलाधार में ब्रह्मचक्र है। यह विन्दुरूप में कुण्डलिनी शक्ति की प्रथम अभिव्यक्ति है। ब्रह्मचक्र सूच्याकार है जिसका अग्रभाग अधोमुख है, विन्दु को तीन वलयों में लपेटे है। यह सत्, रजस् तथा तमस् से युक्त है। दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है। यह सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर लिंगमूल में स्थित है। यहाँ आभामय रक्तवर्ण शिव पश्चिमाभिमुख स्थित है। योगी सांसारिकता से हटकर इस पर लुब्ध रहता है। योगी को पहले कुण्डलिनी शक्ति के प्रति भक्ति-भाव रखना चाहिए तदन्तर वह यहाँ पहुँचता है, उसमें सौन्दर्य, कला तथा सृजनात्मकता आ जाती है परन्तु उनसे वह सन्तुष्ट नहीं होता।

नाभि क्षेत्र में स्थित चक्र का नाम नाभिचक्र या मणिपूर है। यह चमत्कारपूर्ण योगसिद्धियों का केन्द्र है। शिव-शक्ति के मिलन का यह उच्च स्तर है। चौथा चक्र अनाहत हृदय क्षेत्र में सुषुम्ना नाड़ी में मेरुदण्ड में स्थित है। इस ज्योतिकमल में शक्ति भव्य सुन्दर प्रकाश में प्रकट होती है। इसमें ध्यान करनेवाला योगी शिव-शक्ति एकत्व के साथ उनसे अपने तादात्म्य का अनुभव करता है। पाँचवाँ चक्र कण्ठ क्षेत्र में सुषुम्ना में स्थित है, इसे विशुद्ध भी कहा जाता है। इस चक्र में कुण्डलिनी अनाहत कला प्राप्त करती है। यहाँ अनाहत शब्द का अनुभव प्राप्त हो जाता है। छठाँ चक्र तालुमूल में स्थित है इसे तालुचक्र कहते हैं। यहाँ सहस्रार से सतत अमृतधारा प्रवाहित होती है। सातवाँ भ्रूचक्र दोनों भौहों के बीच है, यह ज्ञान क्षेत्र है। आठवाँ चक्र निर्वाण है यह सहस्रार के एक भाग ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। नवाँ चक्र आकाश चक्र है; यह सहस्रार के सुमेरु पर स्थित है। कुण्डलिनी शक्ति यहाँ पहुँचकर शिव से पूर्ण आनन्दमय मिलन करती है। यहाँ उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है। गोरखनाथ ने सोलह ध्यान के आधार माने हैं- अंगुष्ठ, मूलाधार, गुदाधार, मेढ्राधार (लिंग की जड़ में स्थित), उड्डयान (लिंगमूल-नाभिमूल के मध्य स्थित), नाभ्याधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, घण्टिकाधार (जिह्वा के मूल में ऊपर), तालू आधार, जिह्वाधार, भ्रूमध्याधार, नासाधार, कपाटाधार (नासा मूल में स्थित), ललाटाधार, ब्रह्मरन्ध्र।

गोरखनाथ ने योग सम्प्रदाय की पारम्परिक मान्यताओं, विचारों के साथ अपनी नवीन मान्यताओं को समाविष्ट करते हुए बहुत प्रांजल तथा व्यवस्थित ढंग से अपने द्वारा लिखित संस्कृत भाषा में निबद्ध ग्रन्थों में निरूपित किया है। उनकी भाषा सरल, सुबोध तथा विचार-व्यंजक है। प्रश्न उठता है कि परमतत्त्व, आत्मा, जगत् तथा मुक्ति के साधनों के तथ्यात्मक ज्ञान से सांसारिक दुखों से या विभिन्न योनियों में आवागमन (जन्म एवं मृत्यु) से छुटकारा मिल सकता है? सूचनात्मक ज्ञान मुक्ति का साधन कदापि नहीं हो सकता। मनुष्य अपने अन्दर निहित विकास की अनन्त सम्भावनाओं की जानकारी मात्र से असीमित व्यक्तित्व हासिल नहीं कर सकता है। गोरखनाथ इसीलिए ज्ञान को साधना के द्वारा अनुभूति का विषय बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। योगी अनुभव की यथार्थता में अटूट विश्वास रखकर परम सत्य में लीन होना चाहता है। जो बातें चेतना के उच्च स्तर पर सहज हो सकती हैं, वे निम्न स्तर पर चमत्कारी, अप्राकृत तथा अतार्किक प्रतीत हो सकती हैं। यथार्थ योगी चरम या समाधि अवस्था के अनुभवों का वर्णन नहीं कर सकता है, केवल उन अनुभूतियों की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा तथा पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

गोरखबानी में गोरखनाथ के अनुभूतिपरक एवं साधना-प्रणाली के निर्देशक विचार संग्रहीत हैं। उनके बहुत से अनुयायी ऐसे रहे होंगे जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान न रहा होगा अतः उन्होंने अपने व्यावहारिक साधना पद्धति को लोकभाषा में अभिव्यक्त किया। गोरखबानी की अभिव्यक्ति काव्यात्मक अधिक है, उसमें रूपकों, प्रतीकों में चिन्तन को रूपायित करने का प्रयत्न किया गया है। गोरखनाथ

ने अपनी दार्शनिक मान्यताओं को लोक-मान्यताओं में प्रचलित विविधताओं के परिप्रेक्ष्य में रूपान्तरित किया है। वे अधिक व्याख्या न करके विचार के लिए योगियों तथा मत-मतान्तर या सम्प्रदाय विशेष में आस्था रखनेवालों को विवश करते हैं। योगिक मान्यताओं के विषय में वे सहज जानकारी देते हैं। हिन्दू और मुसलमान के पूजा स्थल क्रमशः मन्दिर तथा मस्जिद है, एक राम को मानता है दूसरा खुदा को लेकिन योगी का उपासना स्थल (ध्यान केन्द्र) ब्रह्मरन्ध्र है। योगियों का ईश्वर राम-खुदा दोनों से परे है। वह केवल पिण्ड में होता तो कोई मरता नहीं, ब्रह्माण्ड होता तो सबको दिखाई देता, वास्तव में वह दोनों में निरन्तर निवास कर रहा है। यह भी उलटवासी है इसको समझने के लिए गोरखनाथ के पूर्व वर्णित विचारों से अवगत होना आवश्यक है। एक अन्य सबदी में वे कहते हैं कि ब्रह्म घट-घट व्यापी है। स्थूल अर्थ में लोग यही समझते हैं कि वह किसी एक स्थान पर स्थित है, ऐसा नहीं है। पिण्ड में शिव-शक्ति की उपस्थिति को अनेक पदों एवं सबदियों में वर्णित करके गोरखनाथ देह को ही सर्वश्रेष्ठ मन्दिर मानते हैं। जो लोग ईश्वर की खोज के लिए वन में भटकते हैं, या तीर्थों, मन्दिरों में दौड़ते हैं वह प्रयत्न व्यर्थ है। धर्म-साधना में जो विभिन्न आडम्बर प्रचलित हैं गोरखनाथ उनका भी खण्डन करते हैं। प्रत्येक हिन्दू अपने जीवन में एक बार बदरीनाथ-केदारनाथ की यात्रा की इच्छा रखता है। केदार शिव का धाम है। आज के छः-सात सौ वर्ष पूर्व केदार की यात्रा कितनी कठिन रही होगी, इसका सहज अनुमान किया जा सकता है। बहुत लोग अर्थाभाव, शक्त्याभाव के कारण केदार पहुँच नहीं पाते गोरखनाथ सहज सरल काया तीर्थ में केदार का मोक्ष-द्वार सबके लिए खोल देते हैं-

ऊँचे-ऊँचे परबत विषम के घाट, तिहाँ गोरषनाथ कैलिया से बाट।
काली गंगा, धौली गंगा, द्वि झिलमिल दीसे, काउरूका जलपुनि र गिर पईसै।
अरधै जोगेश्वर उरधै केदारं भोला लोक न जानै मोष दुवारं।
आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूंता काया केदार साधी ले गोरष अवधूताः।

रूपकातिशयोक्ति तथा नवरचित प्रतीकों के द्वार गोरखनाथ देहस्थ केदार शिव स्थान का रोचक वर्णन करते हैं। भौगोलिक स्थानों को बड़े कौशल से गहन योगिक अनुभूतियों के लिए ग्रहण किया गया है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं, विषम घाटियाँ हैं, इनको पार करके ही केदार पहुँचा जा सकता है। गोरखनाथ ने उन्हें सपाट मैदान बना दिया है। काली गंगा अर्थात् पिंगला नाड़ी, धवल गंगा अर्थात् इड़ा नाड़ी दोनों त्रिकुटी में मिलकर प्रकाशमान हो रही हैं। गंगोत्री तथा यमुनोत्री जो पर्वत से नीचे गिर रही थीं, काँवड़िए उनको वितरित करने के लिए बाह्य तीर्थों में ले जा रहेथे वह पानी आकाश की ओर ऊर्ध्वमुखी हो रहा है। योगीश्वर नीचे हैं और केदारस्थ शिव ऊपर हैं, भोले लोग मोक्ष का द्वार नहीं जानते, गोरखनाथ जानते हैं।

गोरखबानी में उपदेशात्मक तथा प्रबोधात्मक शैली का प्रयोग प्रभूत मात्रा में हुआ है। सामान्य

जीवन जीने के तौर-तरीके, सामाजिक एवं व्यावहारिक नीतियों का निर्देश अनलंकृत तथा नितान्त ऋजु भाषा में किया गया है; उदाहरणार्थ-

मूरिष सभा न बैसिबा अवधू पंडित सौं न करिअ बादं।
राजा संग्रामे झूझ न करबा हेलै न षोइबा नादं॥ (गोरखबानी-सबदी-121, पृ.43)

अवधू को सम्बोधित इस सबदी में कहा गया है कि मूर्ख की सभा में नहीं बैठना चाहिए, पण्डित से वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, राजा से युद्ध नहीं करना चाहिए और लापरवाही (मस्ती) में नाद (सोऽहं की सहज लय) नहीं खोनी चाहिए। इन पंक्तियों में अभिधार्थ अवाधित नहीं है। मूरिष का अर्थ अज्ञानी है किन्तु पण्डित का तात्पर्य है योगेतर दर्शन तथा धार्मिक विचारों के प्रति तर्कातीत निष्ठावाले व्यक्ति; यदि समान चिन्तन प्रणाली नहीं है, ज्ञान की विपरीत दिशाएँ हैं तो वाद-विवाद से तत्त्व का नाश होगा, ज्ञान का विकास नहीं होगा। एक योगी या साधारण जन राजा से कैसे युद्ध कर सकता है, दोनों के बल और सामर्थ्य का क्षेत्र नितान्त भिन्न है।

यह सर्वमान्य धारणा है कि उच्चस्तरीय गम्भीर विचारों की अभिव्यक्ति के लिए तत्सम प्रधान या स्तरीय मानक एवं पारिभाषिक शब्दावली से युक्त भाषा की अपेक्षा होती है। बड़े-बड़े ज्ञानी पण्डित, आचार्य, दार्शनिक कितनी ऊँची-ऊँची बातों को अपने भाषणों, व्याख्यानों तथा लेखन में निरूपित करते हैं किन्तु उनका आचरण और व्यवहार उन विचारों से कितना भिन्न होता है। वाणी के आकर्षण से भी व्यक्ति ठगा जाता है। गोरखनाथ ऐसे लोगों के प्रति सतर्क रहने की सलाह देते हुए नितान्त दैनिक प्रयोग की तद्‌भव शब्दावली में गम्भीर मन्तव्य को व्यंजित कर देते हैं। वे बार-बार दृष्टान्तों एवं उदाहरणों से अपनी बातों को सुबोध बनाने की चेष्टा करते हैं। उनकी भाषा में तीखा व्यंग्य है, कहीं-कहीं हृदय तथा मस्तिष्क को तिलमिला देनेवाली तीक्ष्ण उक्ति है। सारा संसार वेश्या की कमाई खा रहा है। 'माया' के लिए वेश्या शब्द का प्रयोग किया गया है।

गोरख जिस तत्त्व पर बल देना चाहते हैं उसकी महत्ता अतिरंजित शैली में अंकित करते हैं। पवन और विन्दु गुरु, खान-पान आदि के विषय में ऐसी उक्तियाँ उपलब्ध हैं- **'व्यंद ही जोग व्यंद ही भोग। व्यंद ही हरै चौंसठ रोग।'** सूर्य, चन्द्र, गंगा, यमुना, सरस्वती, गाय, बैल, बछड़ा, कामध ेनु, पर्वत, मछली, गढ़, नगर, त्रिवेणी, बेल, आग, तम्बूरा, डाँडी, देवालय आदि सैकड़ों शब्दों को उनके मान्य एवं प्रचलित अर्थ से विलग करके प्रतीक या रूपक के रूप में प्रयोग किया गया है। योगिक साधना के रूपकों के बीच कुछ ऐसे कथन हैं जो अर्थ को विसंगत कर देते हैं, फलस्वरूप अर्थ की संगति बैठाने के लिए साधना-प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में स्वयं कल्पना से अर्थ को पूरित करना पड़ता है। उदाहरणार्थ-

चन्द्रमा करिले षूटा, सूरजि करिले पाट।
नित उठि धोबी धोवै, तृवेणी के घाट॥

सहस्रार में चन्द्रमा है जिससे अमृत रस च्युत होता है। मूलाधार में सूर्य है जो उसे सोख लेता है। चन्द्रमा को लकड़ी बनाकर सूर्य को तख्ता बनाकर धोबी की तरह नित्य उठकर त्रिवेणी के घाट पर पीटा जाए। चन्द्र नाड़ी, सूर्य नाड़ी (इड़ा और पिंगला) दोनों को मिलाकर त्रिवेणी त्रिकुटी या ब्रह्मरन्ध्र में सुषुम्ना की शुद्ध वायु से मन को निर्मल करना। गोरखबानी की अनेक उलटवासियाँ एक ओर उक्ति का चमत्कार प्रदर्शित करती हैं, दूसरी ओर परमपद या समाधि की अवस्था में प्राप्त अनुभवों की अद्‌भुत प्रवृत्ति को व्यंजित करती हैं। उलटवासियों में वैचित्र्यपूर्ण विसंगत शब्द–योजना परात्पर स्तर के अनुभवों का अहसास मात्र कराने के लिए है, अर्थ की लौकिक संगति बैठाने के लिए नहीं। एक पद की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं–

नाथ बोलै अमृत वांणी वरिषैगी कंबली भीजैगा पांणी॥
गाड़ि पडिरवा बाँधिलै खूँटा, चले दमाया बाजिलै ऊँटा॥
ककउआ की डाली पीपल वासै मूसा के सबद बिलइया नासै॥
चले बटावा थाकी बाट सोवै डुकरिया ठौरै षाट॥
ढूकिले कूकर भूकिले चोर, काढ़ै घणी पुकारे ढोर॥
ऊजड षेड़ा नगर मझारी, तलि नागरि ऊपर पनिहारी॥
गगरी परि चूल्हा धूंधाइ, पोषणहारा कौ रोटी खाइ॥
कामिनि जलै अँगीठी तापै बिचि वैसंदर थरहर कांपै॥
एक जु रढ़िया रढ़ती आई, बहू बिनाई सासू जाई॥
नगरी कौ पांणी कूई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै॥

इस पद में कंबल बरसता पानी भीगता है। गाय के बछड़े को गाड़कर उसमें खूँटा बाँध दिया गया है। ऊँट पर मार पड़ रही है नगाड़ा बज रहा है। कौआ की शाखा पर पीपल बैठा है और चूहे की आवाज से बिल्ली का नाश हो गया। बटोही चलता है और राह थक जाती है। डुकरिया स्त्री पर खाट (चारपाई) बैठ गयी है। कुत्ता छुप गया चोर भूँक रहा है। नगर का मध्य भाग उजड़ गया है, नीचे गगरी है ऊपर पानी भरने वाली। लकड़ी रखी है चूल्हा जल रहा है। पालनेवाली को रोटी खा रही है। स्त्री जल रही है, अँगीठी ताप रही है, आग काँप रही है। नगर का पानी कुएँ में आ रहा है, बहू सास को जन्म दे रही है। इस पद में प्रयुक्त शब्द न तो प्रतीक हैं और न पारिभाषिक हैं। इन्हें न तो साधारण शिक्षित व्यक्ति समझ सकता है और न योगी जन। मुझे ऐसा लगता है परवर्ती सन्तों की उलटवासियों की प्रतियोगिता में ऐसी निरर्थक उलटवाँसियाँ गोरखनाथ के नाम पर गढ़ी गयी

हैं। प्रयुक्त शब्दों के विन्यास से विपरीत अर्थहीनता को साधना-प्रणाली में वर्णित विचारों द्वारा जबर्दस्ती आरोपित करके संगत बनाने का प्रयत्न टीकाकारों ने किया है।

ज्यादातर छन्दों में गुरु की महिमा, बाह्य आडम्बरों के विरोध, अहिंसा, सात्विक जीवन यापन, मधुर भाषण, स्वल्पाहार, इन्द्रिय निग्रह, कामवासना से विरक्ति आदि सामाजिक सन्दर्भों को अंकित किया गया है। गोरखनाथ की भाषा पर पूर्वी बोलियों का विशेष प्रभाव है। राजस्थानी, खड़ी बोली तथा पहाड़ी भाषाओं के तत्त्व भी उसमें समाहित हैं। मूर्धन्य 'ष' का प्रयोग 'ख' के स्थान पर है जैसे- राषै, षात (खात) आदि। पुरानी हिन्दी के कृदन्त (बहुवचनीय) भणंत, पिबंत के प्रयोग द्रष्टव्य हैं। भविष्यकालिक 'बा' भूतकालिक 'ल' पूर्वी भाषाओं के सदृश हैं। वूंद, पिंड आदि के लिए व्यंद, प्यंड वैसवाड़ी (अवधी) से मेल रखते हैं। 'ब' प्रत्यय चाहिए के अर्थ में भी प्रयुक्त है जो संस्कृत मूल 'तव्यत्' के अनुकूल है। चूँकि गोरखबानी का पाठ निर्धारण वैज्ञानिक रीति से नहीं हो सका है इसलिए भी भाषा तथा कथ्य की कुछ विसंगतियाँ मिलती हैं। 'सबदी' में विचारों की प्रांजलता तथा भाषिक संरचना अधिक व्यवस्थित है।

लोकभाषा के संवर्धन में नाथपंथ का योगदान

डॉ. कन्हैया सिंह* एवं डॉ. प्रदीप कुमार राव**

प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात् जब आमजन की तत्कालीन प्रचलित बोली-बानी में रचनाएँ लिखी गयीं तो उन्हें 'भाषा' की रचना कहा गया। 'भाषा' शब्द लोकभाषा के लिए ही प्रयुक्त हुआ था। साहित्य के इतिहासकारों द्वारा इन्हें भाषा-काव्य कहा गया। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की अवधी के लिए कहा **'भाषा निबद्ध मति मंजुल मातनोति'**। ब्रजभाषा के केशवदास ने कहा: **'भाषा बोल न जानई जाके कुल के दास। सो भाषा रचनाकरी जड़मति केशवदास'।** भाषा-काव्य से ही हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ होता है। अपभ्रंश 'पुरानी हिन्दी' भले कही गयी पर वह अपभ्रंश ही है।

भाषा-काव्य के प्रथम कवि गोरखनाथ हैं। उन्होंने संस्कृत में 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' आदि कई ग्रन्थ लिखे, पर भाषा में 'गोरखनाथ की बानी' और दत्त-गोरख-संवाद आदि कई लघु रचनाएँ भी लिखीं। ऐसा क्यों किया? इस प्रश्न का उत्तर है कि सिद्धान्त-निरूपक ग्रन्थ साधकों के लिए और बानियाँ, पद आदि लोक से संवाद के लिए लिखे गये। लोक-संवाद की भाषा लोकभाषा ही हो सकती है। संस्कृत के विद्वान् होते हुए तुलसी ने अवधी में 'मानस' और ब्रजभाषा में अन्य रचनाएँ लिखी। गोरख, कबीर, तुलसी आदि कवि ही नहीं अपितु समाज का मार्गदर्शन करने वाले मनीषी थे। इसीलिए इनकी भाषा लोकभाषा थी।

रामचन्द्र शुक्ल ने गोरखबानी की रचना वि.सं. 1400 की मानी है। गोरखनाथ की उपस्थिति दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी है तो उनकी रचना 1400 की कैसे होगी। शुक्ल जी ने यह उसकी भाषा के आधार पर तय किया है पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि ये रचनाएँ उनके शिष्यों द्वारा लिखी गयीं पर साखी और बानी में शायद कुछ रचना गोरख की हों। एक पद का नमूना देखिए:

स्वामी तुम्हई गुरु गोसाई। अम्हे जो शिव सबद एक बूझिबा।
निरारंबे चेलाकूँण विचि रहै। सद्‌गुरु होइस पुछ्या कहै।

---

*राहुल नगर, आजमगढ़ – 276001; मो. 9454711822
**प्राचार्य, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर-273014

'गोरखनाथ की बानी' की रचनाओं का संग्रह शिष्यों के द्वारा हुआ होगा तो उसके मूल भाषा रूप का सरलीकरण होता गया और वर्तमान संग्रह की कुछ साखियाँ और पद प्राचीन हैं पर अन्य की भाषा 1400 वि.सं. के आसपास की है। पाठ-संपादन का यह सिद्धान्त है कि पाण्डुलिपि में प्राप्त भाषा यदि कवि की मूलभाषा नहीं है तो भी उसका कुछ अवशेष तो उसमें है ही (If not original at least is remains of its original)। अतः जो मूल प्रश्न विचारणीय है- 'लोकभाषा के संवर्धन में इनकी भूमिका' उसमें तो गोरखनाथ सहित नाथपंथ के कवियों की पहल और योगदान निर्विवाद रूप से सिद्ध है। 'गोरखबानी' के साथ हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'जोगेसुरी बानी' (ना.प्र. स.) के भुसुकपा, लुइपा आदि की रचनाएँ इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

गोरखनाथ की रचनाओं में प्रयुक्त तद्भव शब्दावली का प्रयोग 16वीं शताब्दी तक के लोकभाषा कवियों द्वारा होती है। उनकी एक साखी है-

हिन्दू ध्यावै दउहरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद, जहँ देहुरान मसीत।।

'मसीत' मस्जिद का तद्भव रूप है। तुलसी ने लिखा:

माँगि के खाइबो मसीत में सोइबो, लेवै के एक न देने के दाम।

तुलसी से 200 वर्षों के पश्चात् भूषण ने 'मसीत' का प्रयोग किया:

कासी हूँ की कला गई मथुरा मसीत गई।
सिवाजी न होते तो सुनत होती सबकी।

16वीं शती के नूर मोहम्मद ने कुरान बाँसुरी में 'देवहरा' शब्द का प्रयोग किया है-

बहुत देवहरा खाई गिरावै। शंखनाद की रति मिटावै।

गोरखनाथ की तीन साखियों की तुलना मैं कबीर की रचनाओं से कर रहा हूँ जिससे यह भान हो जाएगा कि गोरखनाथ की रचनाओं की भाषा का कैसा व्यापक प्रभाव सन्तों पर पड़ा है और उनकी भाषा से लोकभाषा की शब्दावली के संवर्धन में कैसे योगदान हुआ है:

(1) गोरखनाथ - हिन्दू आखै राम को मुसलमान खुदाई।
जोगी आषै अलख को जहाँ राम अछै न खुदाई।।

कबीर - हिन्दू मूए राम कहि मुसलमान खुदाई।
कहै कबीर सो जीवता, दुई में कदे न जाइ।।

(2) गोरखनाथ - निर्झर झरे अमी रस पीवणां षट्दल बेध्या जाइ।
चंद बिहूँणा चाँदिणों तहाँ देखा श्री गोरखराइ।

कबीर - मन लागा उनमन सो गगन पहूँचा जाई।
देखा चँद बिहूँणा चाँदिणाँ, तहँ अलख निरंजन राई।

(3) गोरखनाथ - गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला।
गुर बिन ग्यान न पायला रे गइला।

कबीर - गगन मंडल से निर्झर झरै श्वास पासा।
सगुरा होइ ता झर झर पीवै निगुरा जाइ पियासा।

गोरख और कबीर की शब्दावली की एकरूपता सन्त-परम्परा में दूर-दूर तक जाती है। सन्त कवि सुन्दरदास, मलूकदास, हरिदास निरंजनी, दुखहरनदास आदि ने स्पष्ट रूप से गोरखनाथ के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है और इनकी रचनाओं की लोकभाषा के विकास में गोरख आदि नाथपंथी जोगियों का पर्याप्त प्रभाव है। कबीर की ही भाँति दादू की बहुत सी उक्तियाँ गोरखनाथ से मिलती हैं। दादूपंथी सन्तों की बानियों के संग्रह में गोरखनाथ, भरथरी, चर्पटीनाथ और गोपीचन्द की बानियाँ संगृहीत हैं। इसी प्रकार 'साधपंथी' साधुओं की रचनाओं के साथ गोरखनाथ और गोपीचन्द की गीत संगृहीत हैं। इतना ही नहीं वैष्णव कवियों में भी गोरखनाथ की भाषा का प्रभाव है; नादेव, ज्ञानदेव, रामदास आदि पर इसका व्यापक प्रभाव तो है ही तुलसीदास ने भी अलख आदि शब्दों का प्रयोग किया है:

हम लख, हमहिं हमार लख हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै रामनाम लखु नीच॥

या **'अलख लखा नहिं जाइ'** आदि प्रयोग मिलते हैं।

भाषिक शब्दावली के प्रयोग में एक और बात का ध्यान रखना होगा कि गोरखनाथ के समय में मुसलमानों का प्रवेश देश में हो चुका था और उत्तरी भारत में लोकभाषा में फारसी के बहुत से शब्द आ गये थे। अत: गोरखनाथ ने भी इन शब्दों का प्रयोग बड़े सार्थक ढंग से किया है।

उतपति हिन्दू जरणा जोगी अकल पीर मुसलमानी।
ते राह चीन्हो हो काजी मुलाँ, बरम्हा विसुन महादेव भानी।

अक्ल और पीर शब्दों का सहज प्रयोग है। यहाँ गोरख का कथन है कि मैं जन्म से हिन्दू, योग साधना में जलकर जोगी और मुसलमानी पीरों की बुद्धि अर्थात् उनका एकेश्वरवाद मेरे साथ है।

कबीर भी काजी-मुल्ला से इसी प्रकार संवाद करते हुए उन्हें ठीक राह पहचानने का संदेश

देते हैं-

काजी कवन कितेब बखानी।
पढ़त पढ़त केतिक जुग बीते अजहूँ राह न जानी।

+ + + +

कबिरा पकड़ी राह राम की काजी रहे झख मारी।

'कलमा' की चर्चा करते हुए गोरख कहते हैं:

नाथ कहंता सब जग नाथ्या, गोरख कहता गोई।
कलमा का गुर महमंद होता, पहले मूवा सोई॥

गुप्त बात जो गोरख कहते हैं वह यह कि कलमा का जन्मदाता मुहम्मद पहले स्वयं मरकर तब यह ज्ञान प्राप्त किया। कलमा है- **'ला इलाहि लिल्ला मुहमंद रसूल।'** अर्थात् इलाही या खुदा एक है, मुहमंद उसका प्रतिनिधि है। कहते हैं कि मुहम्मद साहब ने तूर पर्वत की हेरा नामक गुफाओं में तपस्या की और अपने इन्द्रियों को मारकर जीवन्मुक्त हुआ तब उसपर यह कलमा खुदाई आवाज के रूप में सुनाई दिया।

गोरखनाथ की भाषा पर पंजाबी, बंगाली, भोजपुरी आदि का पर्याप्त प्रभाव है। यह उनके व्यापक भ्रमण का परिणाम है। जैसे भोजपुरी का प्रभाव उनके कहिबा, सुनिबा जैसे शब्दों पर है। जैसे-

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चलिबा, धीरे धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा, भणत गोरख रावं।

भोजपुरी में 'खइबा कि ना', 'चलबा न' आदि सामान्य प्रयोग हैं। बंगाली भाषा पर काम करनेवाले ब्रजनन्दन सिंह ने लिखा है:

'लुकाइबा, लुटिबा जैसोर जिले के खास प्रयोग हैं।' उन्होंने अपनी पुस्तक 'बंगला भाषा की भूमिका' में गोरख की कई साखियों को उद्धृत करके उन पर बंगला प्रभाव बताया है।

पंजाबी का तो प्रभाव सहज ही है क्योंकि पंजाब उनका कार्य क्षेत्र भी रहा है। 'आइया', 'गइया' जैसे रूप पंजाबी प्रभाव से आये हैं। राजस्थानी बोली से 'ण' का प्रयोग 'न' के स्थान पर तथा पिण्ड का प्यंड; विन्दु का व्यंद आदि रूप आये हैं। कारक चिह्नों में भी खड़ी बोली के ने, को, से आदि, ब्रज के कूँ, सूँ, राजस्थानी के 'थें' आदि रूप भी मिलते हैं।

इस प्रकार गोरखनाथ और नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवि योगियों ने खड़ी बोली का एक ऐसा धरातल तैयार किया था जो सन्त कवियों की लम्बी परम्परा में 14वीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक चलता रहा। यह पंचमेल खिचड़ी या सधुक्कड़ी भाषा नहीं अपितु एक ऐसी लोकभाषा थी जो सम्पूर्ण उत्तर भारत की प्रतिनिधि भाषा जैसी बन गयी।

लोकभाषा का जो रूप नाथयोगियों की बानी में आया है, वह लोकभाषा के संवर्धन में अनायास ही महत् भूमिका का निर्माण करता है। गोरखनाथ और नाथपंथ पर जिन अधिकारी विद्वानों ने विचार किया है, उनका मत भी कुछ इसी प्रकार है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन धर्मसाधना' (पृ.68) में लिखा है कि 'योगियों के लोकभाषा में लिखने की परिपाटी दीर्घकाल से चली आती हुई परम्परा का अन्तिम रूप है। यह परम्परा लोकभाषा में थी और लोकहित उसका प्रधान लक्ष्य था। उन्होंने 'नाथ सम्प्रदाय' (पृ.182) में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के हवाले से लिखा है कि गोरखनाथ की बानियाँ साहित्यिक सांस्कृतिक विकास की लड़ी में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में हैं। डॉ. रांगेय राघव ने उनकी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है: "अपभ्रंश काल और हिन्दी युग के मध्यकाल की कविता को संधियुगीन नाथ सम्प्रदाय की कविता स्वीकार किया गया है। गोरखनाथ इस युग के सच्चे प्रतीक हैं। गोरक्षनाथ के समय में अपभ्रंश का रूप अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न नहीं था। उस समय तद्भव के स्थान पर तत्सम प्रयोग गोरखनाथ का पहला प्रयत्न था जिससे परवर्ती युग में लोगों को तिनके का सहारा मिल गया और भाषा अपने आप दूसरा रूप पकड़ने लगी थी। वर्तमान नाथपंथी ग्रन्थ इस बात की ओर इंगित करते हैं कि उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और था, वह अपभ्रंश और हिन्दी के बीच की भाषा थी और वह संध्या भाषा का परिवर्तित रूप था।" (गोरखनाथ और उनका युग, पृ. 203.204)

'गोरखबानी' के भाषिक विश्लेषण और विद्वानों के विचार से यह प्रकट होता है कि लोकभाषा के संवर्धन में गोरखनाथ और नाथपंथी योगियों की बानियाँ हिन्दी की लोकभाषा के संवर्धन की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। साथ ही गोरखनाथ की संवाद शैली जो प्रश्नोत्तर के रूप में 'मच्छीन्द्र गोरख बोध', 'ज्ञानदीप', 'गोरखदत्त गुष्ठि' आदि में प्रकट हुई है। वे इस शैली के प्रवर्तक माने जाते हैं। इसी प्रकार उलटवासियों और प्रतीक शैली का प्रवर्तन भी उन्हीं के द्वारा हुआ जो आगे के सन्तकवियों की परम्परा में दूर-दूर तक चलता रहा। अत: भाषा ही नहीं कथन की भंगिमा और शैलियों का जो प्रयोग गोरखबानी में हुआ, उसका प्रभाव कबीर आदि सन्तों के साथ कृष्णभक्त कवियों के 'भ्रमरगीत' में भी हुआ। ध्यातव्य यह कि भ्रमरगीत के संवाद में योग और भक्ति की ही तुलना है।

महायोगी गुरु गोरखनाथ और भोजपुरी

डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त*

भोजपुरी काव्य परम्परा में आदि कवि के रूप में महायोगी गुरु गोरखनाथ लोकख्यात हैं। गुरु गोरखनाथ से जो काव्य-सरिता प्रवाहित हुई वह अनवरत, अनाहत और अबाधित रूप में आज भी प्रवहमान है। यह भोजपुरी लोक की ऐसी अजस्र धारा है जो गुरु गोरखनाथ जी से निकलती है तो नाथपंथ से होती हुई सन्त-साहित्यकारों से आगे बढ़ती हुई लोक-पीड़ा को समेटे हुए आज भी गतिमान है। भोजपुरी की कविता अपने आदिस्रोत गुरु गोरखनाथ से निकलती है तो चौरंगीनाथ, योगिराज भर्तृहरि, कबीरदास, कमालदास, धरनीदास, धरमदास, दादू दयाल, पलटूदास और भीखा साहेब तक की यात्रा करती हुई महेन्दर मिसिर, भिखारी ठाकुर, भारतेन्दु हरिश्चन्द, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', मोती बी.ए., धरीक्षण मिश्र, मन्नन द्विवेदी, राम आधार त्रिपाठी 'जीवन जी', चंचरीक जी, राम विचार पाण्डेय, मनोरंजन प्रसाद सिन्हा, राम अभिलाष बिसराम, राम जियावन दास 'बावला', गोरख पाण्डेय, बाबू रघुवीर नारायण, त्रिलोकीनाथ उपाध्याय, चन्द्रशेखर मिश्र, रवीन्द्र श्रीवास्तव 'जुगानी', तारकेश्वर मिश्र 'राही', रामवचन शास्त्री 'अंजोर', दूधनाथ शर्मा 'श्याम', रामप्रकाश शुक्ल 'निर्मोही', भोलानाथ गहमरी, कमलेश राय जैसे शीर्षस्थ कवियों के काव्य तक पहुँचती है। इसके बाद भी इसमें ठहराव नहीं बल्कि उसमें आज भी वही गति बनी हुई है।

किसी भी लोकभाषा के जन्म के विषय में समय-काल को ज्ञात करना असम्भव है। लोक के जन्म के साथ ही लोकभाषा का जन्म हुआ होगा। लोक में वस्तु-विनिमय को लेकर सबसे पहले भाषा ने जन्म लिया होगा। जैसे-जैसे लोक में सभ्यता का उदय हुआ होगा, लोकभाषा का विस्तार हुआ होगा। भोजपुरी भी लोकभाषा है। अतः इसके जन्म के सन्दर्भ में चाहे जो भी आकलन किया जाय, इस भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताना कठिन है परन्तु यह कहना उचित होगा कि लोक के साथ ही लोकभाषा का जन्म हुआ होगा और कालान्तर में उसका विकास हुआ है। भोजपुरी भी अपने जन्म के बाद एक लम्बी यात्रा के उपरान्त यहाँ तक पहुँची है। भाषा का प्राचीन प्रयोग आज से थोड़ा भिन्न है परन्तु प्राचीन भोजपुरी से भी आज की भोजपुरी को समझा जा सकता है।

**प्रवक्ता-हिन्दी, महाराणा प्रताप इण्टर कॉलेज, गोरखपुर-9415777140, सम्पादक-योगवाणी

महात्मा गोरखनाथ ने भोजपुरी में रचनाएँ की हैं, यह रामचन्द्र शुक्ल, बड़थ्वाल जी और हजारी प्रसाद द्विवेदी तीनों विद्वानों ने स्वीकार किया है। शुक्ल जी ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है- "पहली बात है भाषा। सिद्धों की उद्धृत रचनाओं की भाषा देश-भाषा मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी हिन्दी की काव्यभाषा है। यह तो स्पष्ट है उन्होंने भरसक उसी सर्वमान्य व्यापक काव्यभाषा में लिखा है, जो उस समय गुजरात राजपूताने और ब्रजमण्डल से लेकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की शिष्ट भाषा थी। पर मगध में रहने के कारण उनकी भाषा में कुछ पूरबी प्रयोग भी (जैसे भइले, बूड़िल) मिले हुए हैं।"[1]

शुक्ल जी ने जिसे पूरबी प्रयोग कहा है उसमें भोजपुरी भी सम्मिलित है; जैसे- भइले, गइले, अइले, खइले और बूड़िल, खाइल, पिअल, गइल, आइल आदि। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने गोरखनाथ जी की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है-

"उन्होंने (गोरखनाथ ने) लोकभाषा को भी अपने उपदेशों का माध्यम बनाया। यद्यपि उपलब्ध सामग्री से यह निर्णय करना बड़ा कठिन है और उनकी भाषा का विशुद्ध रूप क्या है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने अपने उपदेश लोकभाषा में प्रचारित किये थे।"[2]

पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने जिसे लोकभाषा कहा है, उनका संकेत भोजपुरी की तरफ रहा होगा या अन्य लोकभाषाओं की ओर भी।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ जी के 39 ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है। सबदी, पद, शिष्या दरसन, प्राणसंकली, नरवै बोध, आत्मबोध, अभैमात्र योग, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, मछिन्द्र गोरषबोध, रोमावली, ग्यांन तिलक, गोरख गणेश गुष्टि, गोरषदत्त गोष्ठी, महादेव गोरष गुष्टि, सिष्टपुरान, दयाबोध, जाती भौंरावली, नवग्रह, नवरात्र, अष्ठ परिघ्या, रहरास, ग्यानमाला, आत्मबोध, व्रत, निरंजन पुराण, गोरषवचन, इन्द्री देवता, मूल गर्भावली, षणी वाणी, गोरष सत, अष्टमुद्रा, चौबीस सिद्धि, पड़क्षरी, पंच अग्नि, अष्टचक्र, अबली सिलक और बाफिर बोध।

'गोरखबानी' में उद्धृत सभी छन्द इन्हीं पुस्तकों के छन्द हैं। बड़थ्वाल जी ने लिखा है- "मैंने जब उन छन्दों का अध्ययन किया और भाषा की जाँच की तब भोजपुरी भाषा की बहुत सी कविताएँ मिलीं। अनेक कविताएँ तो मुहावरे, प्रयोग अथवा क्रिया की दृष्टि से विशुद्ध भोजपुरी की हैं और अधिक में उस समय के अपभ्रंश के शब्द जैसा कि शुक्ल जी ने लिखा है, भोजपुरी क्रियाओं तथा मुहावरों के साथ व्यवहृत हैं।[3]

गोरखबानी में भोजपुरी के छन्द हैं। इन भोजपुरी वाले सभी छन्दों की भाषा सर्वत्र केवल भोजपुरी ही नहीं मान सकते। इनमें अधिकांश शब्द तो भोजपुरी के हैं किन्तु कुछ ऐसे छन्द हैं जिनकी भाषा मिश्रित कही जायेगी फिर भी भोजपुरी क्रिया पद होने के कारण उनकी गणना भोजपुरी छन्द

में की गयी है। भोजपुरी पदों की संख्या सबदी और पद में अधिक हैं।

शिवावतार, हठयोग के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का संग्रह गोरखबानी के अध्ययन से यह यह ज्ञात होता है कि गोरखबानी में भोजपुरी शब्दों का प्रयोग व्यापक रूप में हुआ। कई-कई छन्द तो भोजपुरी के अत्यधिक निकट हैं। क्रिया-पदों को लेकर किसी प्रकार के संशय की जगह नहीं बचती है। गोरखनाथ जी की भोजपुरी और आज की भोजपुरी में रूपगत थोड़े से परिवर्तन हैं। भोजपुरी के क्रिया-पद की एक लम्बी सूची बन सकती है जिसे आज की भोजपुरी के निकट अथवा ज्यों-का-त्यों देखा जा सकता है।

धरिबा, धाइबा, खाइबा, चालिबा, मरिबा, बोलिबा, बैसिबा, कथिबा, करिबा, सोइबा, जानिबा, पैसत, भखै, भाषंत, पीवत, बूझै, समाइ, षोजत, नाचैं, चमकै, सोयबा, भांजिबा, खोजिबा, करिबा, पायबा पढ़ि-पढ़ि, बढ़ि-बढ़ि, करै, चीन्हत, परखि, जैसे भोजपुरी के क्रिया-पदों का प्रयोग गोरखबानी में हैं जिनमें हसै, रोवै, करै, भखै, चमकै, बूझै, नाचै जैसे शब्द इसी रूप में प्रयोग हो रहे हैं।

गोरखनाथ जी के छन्दों में इन्द्रिय संयम, स्वभाव और स्वस्थ में होने की बात बतायी गयी है वहीं कुछ लोक-व्यवहार की बातें भी बतायी गयी हैं। क्रिया-पद वाले छन्द ध्यातव्य हैं-

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राखि आपनां चीत।। (सबदी-7)

हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यांन। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियांन।
हषै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।। (सबदी-8)

हबकि न बोलिबा ढबकि न चालिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।। (सबदी-27)

धाये न षइबा भूखे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म भेवं।
हठ न करिबा पड़्या न रहिबा यूँ बोल्या गोरष देवं।। (सबदी-31)

थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ तिस घटि पवना रहै समाइ।
गगन मंडल में अनहद बाजै प्यंड पड़ै तो सतगुर लाजै।। (सबदी-32)

उपर्युक्त पाँचों छन्दों में दो प्रकार के क्रिया-पदों का प्रयोग हुआ है। एक तो ऐसे क्रिया-पद जो उस समय के हैं और थोड़े रूपगत परिवर्तन के साथ भोजपुरी में प्रयोग हो रहे हैं। जैसे- हसिबा, षेलिबा, रहिबा, करिबा, गाइबा, धरिबा, कथिबा, हबकि, ठबकि, चालिबा, बोलिबा, षाइबा, मरिबा, लेबा आदि और दूसरे तरह के क्रियापद हैं जो आज भी उसी रूप में बोले, पढ़े और लिखे जा रहे हैं। जैसे- हषै, षेलै, बोलै, रहै, बाजै, पड़ै आदि। प्रथम प्रकार के क्रिया-पद आज हँसबऽ, खेलबऽ,

रहबऽ, करबऽ, गाइबऽ, धरबऽ, कहबऽ, चलब़, बोलबऽ, खइबऽ, मरबऽ, लेबऽ के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। ये सभी भोजपुरी के क्रिया-पद हैं जिनका प्रयोग गोरखनाथ जी ने अपने छन्दों में किया है। उपर्युक्त क्रिया-पद का प्रयोग या तो 'चाहिए' अर्थ में ग्रहण किया जाता है नहीं तो 'आज्ञा' अर्थ में। आज्ञा अर्थ में आज हँसऽ, खेलऽ, रहऽ, करऽ, गावऽ, धरऽ, कहऽ, चलऽ, बोलऽ, खाऽ, मरऽ, लऽ जैसे प्रयोग होते हैं।

गोरखनाथ जी द्वारा रचित भोजपुरी के छन्दों में इन्द्रिय-निग्रह, मन और प्राण-साधना, नाद-बिन्दु साधना, कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्र भेदन, ब्रह्मरन्ध्र में शक्ति और शिव के मिलन का वर्णन है। अमूर्त को प्रतीको के प्रयोग से मूर्त रूप प्रदान किया गया है। प्रथम छन्द (सबदी-7) में योगी को आनन्दपूर्वक रहते हुए, काम-क्रोध को छोड़कर, आत्मसंयम में रहते हुए, मन पर नियंत्रण रखते हुए चित्त को अपने वश में रखने का उपदेश है। द्वितीय छन्द (सबदी-8) में आनन्दपूर्वक रहते हुए जीवात्मा को परमब्रह्म का ध्यान, चिन्तन और स्मरण करते हुए, मन को वश में रखते हुए सदा ईश्वर के साथ रहने का उपदेश है। तीसरे छन्द (सबदी-27) में बिना सोचे-समझे बोलने, असावधानीपूर्वक चलने, गर्व न करने और असहज रहने को योगसाधक के लिए अनुचित कहा गया है। चौथे छन्द (सबदी-31) में शरीर पोषण के लिए उचित आहार और आवश्यक उपवास की शिक्षा है। पाँचवें छन्द (सबदी-32) में योगसाधक के लिए अल्पाहारी और मितभाषी होना आवश्यक बताया गया है। योग-साधना के लिए शरीर का स्वस्थ होना, मन का अचंचल होना और चित्त का दृढ़ रहना आवश्यक है। काया-साधन के लिए शरीर का स्वस्थ, शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। गोरखनाथ जी के भोजपुरी छन्दों में इसका सहज-सरल वर्णन है।

अवधू आहार तोड़ौ निद्रा मोड़ौ कबहुँ न होइगा रोगी।
छठे छमासै काया पलटिबा ज्यूँ को बिरला विजोगी।। (सबदी-33)

गिरही सो जो गिरहै काया। अभि अन्तरि को त्यागै माया।
सहज सील का धरै सरीर। सो गिरही गंगा का तीर।। (सबदी-45)

यहु मन सकती यहु मन सीव। यह मन पांच तत्त का जीव।
यह मन ले जै उनमन रहै। तौ तीनि लोक की बाती कहै।। (सबदी-50 क)

अमावस के घरि झिलमिलि चंदा, पूनिंम के घरि सूरं।
नाद के घरि ब्यंद गरजै, बाजंत अनहद तूरं।। (सबदी-54)

केता आवै केता खाई, केता मांगे केता जाई।
केता रूप विरष तलि रहे, गोरष अनभै कासौं कहै।। (सबदी-58)

उपर्युक्त छन्दों में क्रिया-पद को देखने से ज्ञात होता है कि ये क्रिया-पद भोजपुरी के हैं।

पलटिबा, त्यागै, धरै, रहै, कहै, गरजै, आवै, खाई ये सभी भोजपुरी के क्रिया-पद हैं। इनमें पलटिबा का थोड़ा रूप बदलकर 'पलटबऽ' का प्रयोग होता है, शेष क्रिया-पद ज्यों-का-त्यों आज भी भोजपुरी में प्रयुक्त हो रहे हैं। गुरु गोरखनाथ जी के द्वारा रचित अनेक छन्द हैं जिनमें भोजपुरी के क्रिया-पदों का प्रयोग है। उदाहरण के रूप में कतिपय छन्द प्रस्तुत किये गये हैं। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि गुरु गोरखनाथ जी ने भोजपुरी लोक और लोकभाषा भोजपुरी को गौरव प्रदान किया।

किसी भी भाषा की पहचान उसके शाब्दिक भण्डार और अभिव्यक्ति के सामर्थ्य पर होती है। जिस भाषा में शब्दों का भण्डार जितना बड़ा होता है वह भाषा उतनी ही शक्तिशाली मानी जाती है। भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता जिस भाषा में अधिक होती है वह भाषा दीर्घजीवी होती है। लोकभाषा भोजपुरी में यह क्षमता विद्यमान है। जहाँ एक ही संज्ञा पद के तीन-तीन रूप विद्यमान हैं। बदलते भावों, रूपों एवं दशाओं के लिए नये-नये शब्द हैं। यह जनभाषा है। इसमें कोई बात कही जाये, तो वह लोक में आसानी से पहुँच जाती है। इसी नाते गुरु गोरखनाथ जी ने हठयोग जैसे कठिन साधना को सरल रूप में उसका सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत किया और साधना-पथ में आने वाली बाधाओं का वर्णन किया। लोक-व्यवहार के अनेक पक्षों को लोकभाषा में प्रस्तुत कर जनसामान्य का भी मार्गदर्शन किया। अपने छन्दों में अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग कर जनमानस में इनका स्थान बनाया।

गुरु गोरखनाथ जी ने अपने छन्दों में क्रिया-पदों के अतिरिक्त संज्ञा और अन्य पदों का जो प्रयोग किया है, उनको लिखना सम्भव नहीं, फिर भी कुछ पद ध्यातव्य हैं।

इहां, तहां, मूरिष (मूरिख), जोगी, जोग, संजम, बाइ, पुरिस, रंगा, चंगा, दषिणी, पूरबी, पछमी, सकती, सीव, आगिला, आंषै (आँखैं), काणैं (काने), मुष (मुख), पूता, संजमि, निहचल, मनुवा, छतीसौं, भेव, साच, सबद, उपदेस, औगुन, सुपिनै (सपने), षोटा (खोटा), षरा (खरा), अंगुल, जनम, मस, मानै, संगि, बिन्द, बाई (वायु), भीतरि, अठसठि (अड़सठ), तीरथ, पुरिषा (पुरिखा), सति (सत), बाहरि, नेड़ा (नीयरै), सेत, फटक, मनि, परमारथ, बाद-बिबाद, एकाएकी, चारि, मुषि (मुख), कोई, बिरला, भरथरी, दासा, सूर, चंद, भौंदू (भोंदू), दीया, सरीषा (सरीखा), जती, सती, अन्धार, तत, षटपट (खटपट), सिध, सिला, मेलू, सांग, ग्यांन, डिंभ, गूदड़ी, जुग, भांगि, नकटी, बिसर, बुधि, अग्यांनी, मरमी, अधरमी, आसा, येकै, गिरही, अमली, बैरागी, नकटा, अबिनासी, जोगेसर, बासण, तिरलोक, त्रिबेणी, गियानी, बन, नांव, बिरिछ, जाप, कवल, जोति, जंजाल, पीजरा, जुगति, परलै, टीका, लूगा, गंग, जमुन, जुग, बहुडम्बर, सगुरा, निगुरा, कोइला, ऊजला, कागा, दिसि, पाव, हांडी, अहीरा, बभना, हींग, भोगिया, लोई, संगै, पुंन, सुधि-बुधि, दिढ़, नरकि जैसे शब्दों का भण्डार गोरखबानी में भरा पड़ा है। इन शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है कि गुरु गोरखनाथ जी ने उस समय की प्रचलित भाषा में अपनी रचनाएँ कीं। इन छन्दों में प्रयुक्त शब्द अभी

भी उसी रूप में लोक में बोले और लिखे जा रहे हैं।

लोकोक्तियों को साहित्य में स्थान गुरु गोरखनाथ जी ने दिया है। आज भी वे लोक-व्यवहृत हैं। 'पढ़ि-पढ़ि केता मुवा' इसे ही बाद में कबीर ने कहा- 'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय' आज भी लोक में कही जाती है। सबसे महत्त्वपूर्ण लोकोक्ति 'अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा' बाद में सन्त रैदास से जोड़कर लोक में प्रचलित हुई, वास्तव में इसका प्रयोग गुरु गोरखनाथ जी ने किया है। एक छन्द को लोकोक्ति के रूप में कहा जाता है- "सांग का पूरा, ग्यांन का ऊरा। पेट का तूरा डिंभ का सूरा। बदंत गोरषनाथ न पाया जोग। करि पाषंड रिझाया लोग।।"

गुरु गोरखनाथ जी के भोजपुरी के छन्दों में पदमैत्री देखते ही बनती है। कहीं भी कथ्य प्रभावित नहीं हुआ है। अपने उपदेशात्मक छन्दों में क्रिया-पदों की मैत्री ध्यातव्य है-

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राखि आपनां चीत।। (सबदी-7)

हसिबा, षेलिबा, रहिबा, करिबा, गाइबा जैसे शब्दों की पदमैत्री के कारण यह छन्द लोगों के हृदय में बसता है। एक और छन्द ध्यातव्य है-

हबकि न बोलिबा ढबकि न चालिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।। (सबदी-27)

हबकि, ढबकि, बोलिबा, चालिबा, धरिबा, करिबा, रहिबा की पदमैत्री से गुरु गोरखनाथ जी के भोजपुरी-शब्द-सामर्थ्य का पता चलता है। कथ्य पूर्ण हो जाता है और अपने उपदेश को सामान्य जन तक पहुँचाने में गुरु गोरखनाथ जी पूर्णतया सफल हो जाते हैं।

पदमैत्री का एक और उदाहरण ध्यान देने योग्य है-

इकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पवना बंधि।
षूटै तेल न बूझै दीया, बोलै नाथ निरन्तरि हूवा।। (सबदी-187)

इकटी, बिकुटी, त्रिकुटी जैसे शब्दों की मैत्री और तीनों शब्दों का चयन अत्यन्त सटीक ढंग से किया गया है। 'इकटी' का अर्थ इड़ा, 'बिकुटी' का अर्थ पिंगला और इन दोनों के बीच में 'त्रिकुटी' सुषुम्ना नाड़ी जिनके देवता चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि हैं, का हठयोग-साधना में विशेष महत्त्व है।

कई छन्दों में शब्दों का चयन और उसमें पदमैत्री देखी जा सकती है।

'छाड़ौ तन्त मन्त बैदन्त।'
'पंडित भंडित अर कलबारी।'

ऐसे छन्दों में कहीं भी कथ्य प्रभावित नहीं हुआ है बल्कि ऐसे शब्दों द्वारा कथ्य सफलता से पाठकों तक पहुँचता है।

हठयोग साधना में गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। हठयोग साधना का क्रियात्मक पक्ष गुरु के सान्निध्य में प्राप्त होता है। गुरु गोरखनाथ ने गुरु की महत्ता को स्वीकारा है। बिना गुरु के ज्ञान के कोई भी साधक परमशिव का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। ब्रह्मरन्ध्र में परमात्मा का साक्षात्कार गुरु के द्वारा ही सम्भव है। भोजपुरी के छन्दों में गुरु महिमा का वर्णन है।

गगन मँडल में ऊँधा कूवा तहाँ अमृत का वासा।
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ निरासा।। (सबदी-23)

यहाँ 'गगन मँडल' का अर्थ सहस्रार चक्र या ब्रह्मरन्ध्र से है। यहाँ एक ऐसा कुआँ है जिसका मुँह नीचे की ओर है। इसमें से अमृत-रस झरता रहता है। जो योग्य गुरु के सान्निध्य में रहता है वह इसका पान करता है और जो निगुरा है वह प्यासा ही रह जाता है। कबीर इसे ही शून्य शिखर कहते हैं-

सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सून्य सिखर गढ़ माँहि।।

गुरु माहात्म्य का यह भोजपुरी छन्द ध्यातव्य है-

गुरु की बाचा षोजै नाहीं, अहंकारी अहंकार करै।
षोजी जीवैं षोजि गुरु कौ, अहंकारी का प्यंड परै।। (सबदी-151)

साधक के मन में अहंकार नहीं होना चाहिए। अहंकार शून्यता के बाद ही साधक योग-मार्ग पर अपने पाँव रख सकता है। गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं- जो गुरु के वचनों को जीवन में उतारता नहीं है और व्यर्थ में अहंकार करता है, वह योग-मार्ग का पथिक नहीं हो सकता है।

अधिक तत्त तें गुरु बोलियें, हींण तत्त ते चेला।
मन मानै तौ संगि रमौ, नहीं तौ रमौ अकेला।। (सबदी-161)

गुरु ज्ञान-सम्पन्न होता है और शिष्य में हीनता (कमजोरी) होती है। गुरु खोज-खोज कर शिष्य की कमियों को दूर करता है। शिष्य को गुरु के सामने इसी भाव से जाना चाहिए।

आकास तत सदासिव जांण। तिस अभिअन्तरि पद निरबांण।
प्यंडे परचानैं गुरुमुषि जोइ। बाहुड़ि आवागमन न होई।। (सबदी-168)

आकाश अर्थात् सहस्रार, ब्रह्मरन्ध्र, गगन मंडल, शून्य-शिखर, कैलास जिसमें परमशिव का

निवास है। यहाँ पहुँचने पर ही साधक को जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति मिलती है। शरीरस्थ शिव का ज्ञान उसी को होता है जो गुरु-ज्ञान से सम्पन्न होता है।

जे आसा तो आपदा जे संसा ते सोग।
गुर मुषि बिना न भाजसी ये दून्यों बड़ रोग।। (सबदी-235)

गुरु गोरखनाथ जी ने दो भयंकर रोगों की चर्चा की है। आशा और संशय दो भयंकर रोग हैं। आशा आपदा का कारण है। असत्य संसार को सत्य जानकर जागतिक प्रपंचों में रहना ही आशा है। संसार के नाशवान पदार्थों के आश्रय में विश्वास करना ही दु:ख का कारण है। 'आशा हि परमं दु:खं नैराश्यं परमं सुखं'। संसार असत्य है, इसको सत्य मान लेना ही संशय है। यह संशय साधक के मन में संशय पैदा करता है। आशा और संशय की समाप्ति गुरु-ज्ञान से ही सम्भव है।

भोजपुरी के छन्दों में मानव जीवन की सार्थकता पर गुरु गोरखनाथ जी ने प्रकाश डाला है।

इस ओजुदा मैं मारि लै गोता, कछु मगज भीतरि ब्याल है।
पंच कटार है भीतरि, निमस करि बेहाल है।। (सबदी-236)

गुरु गोरखनाथ जी इस 'ओजुदा' शरीर में 'गोता' लगाने की बात करते हैं। शरीर में ही शिव का वास है। अत: शरीर में ही योगसिद्धि रूपी रत्न मिलते हैं। मगज में विचार करके पाँच इन्द्रियों के साथ-साथ मन के बुद्धि रूपी कटार से मारकर 'निमस' पल भर में बेहाल करके आत्मज्ञान के प्रकाश में भगवान् का बोध कर लेना मानव जीवन की सार्थकता है। इन्द्रियाँ और मन मनुष्य को नचाते रहते हैं। इनके वशीभूत मनुष्य अपने जीवन-लक्ष्य से भटक जाता है और जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता है।

योग की महत्ता को बताते हुए गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं-

जहाँ जोग तहाँ रोग न व्यापै, ऐसा परषि गुरु करना।
तन मन सूँ जे परचा नहीं, तौ काहे को पचि मरना।। (पद-22)

जहाँ योग है, वहाँ रोग नहीं होता है। जहाँ योग है वहीं मुक्ति है। जहाँ रोग है वहीं बन्धन है।

योग साधक का संयमित चित्त और उचित आहार होना चाहिए। मन की एकाग्रता योग साधना के लिए आवश्यक है। आलस्य का परित्याग करना साधक के लिए आवश्यक है। आलस्य में जीवन नष्ट हो जाता है। जीवन तो क्षण-क्षण अपनी गति से व्यतीत हो जाता है। जो जागता है, वही योगी है। गुरु गोरखनाथजी ने कहा है-

संजम चित औ जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।
छाड़ौ तंत मंत बैदन्त। जंत्र गुटिका धात पाषंड।। (नरवै बोध-4)

योग साधना के मार्ग में माया बहुत बड़ी बाधा है। माया से विरक्त ही योग साधना के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं-

या रहनी मैं घर घर बासा जोग जुगति करि पाया।
सिध समाधि पंच घर मेला, गोरष तहाँ समाया।। (ग्यांन तिलक-15)

गुरु गोरखनाथ जी ने लोक व्यवहार की बहुत सी बातें बतायी हैं। उन्होंने कहा है कि सन्त-महात्माओं की संगति से व्यक्ति सद्गति प्राप्त करता है वहीं किसी-किसी की संगति साधक या व्यक्ति के लिए साधना-पथ में अवरोध उत्पन्न कर देती है। गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं कि गाल बजाने वाले पण्डित से, मदिरा का सेवन करने वाले से, काम में व्याकुल स्त्री से, अनपढ़ ब्राह्मण से और घरबारी योगी से दूर रहना चाहिए। इनकी संगति अहितकर होती है।

पंडित भंडित अर कलबारी। पलटी सभा बिकलता नारी।
अपढ़ बिपर जोगी घरबारी। नाथ कहै रे पूता इनका संग निबारी।। (सबदी-261)

गुरु गोरखनाथ जी अहिंसा के उपदेशक हैं। वे लोगों से मांसाहार न करने की बात करते हैं। मांसाहार से दया और धर्म का नाश होता है। मदिरा के सेवन से प्राणशक्ति निर्बल हो जाती है और भांग के सेवन से ज्ञान और ध्यान दोनों खो जाते हैं।

अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवत तहां प्राण निरास।
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत। जग दरबारी ते प्रांणी रोवंत।। (सबदी-165)

एक और छन्द ध्यातव्य है-

आफू खाय भांगि भसकावै। ता मैं अकिलि कहाँ तै आवै।
चढ़तो पित्त ऊतरतां बाई। तातैं गोरष भांगि न खाई।। (सबदी-208)

गुरु गोरखनाथ जी ऐसे योगियों से लोक को सावधान रहने के लिए कहते हैं जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है। ऐसे योगी केवल स्वांग करके लोगों को रिझाते हैं। ऐसे योगियों से सदैव दूर रहना चाहिए।

सांग का पूरा ग्यांन का ऊरा। पेट का तूटा डिंभ का सूरा।
बदंत गोरखनाथ न पाया जोग। करि पाषंड रिझाया लोग।। (सबदी-190)

मूर्ख की सभा में बैठना नहीं चाहिए। मूर्ख का अज्ञान ही उसके लिए ज्ञान होता है। ऐसी स्थिति में वह किसी की कोई बात सुनना नहीं चाहता। गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं कि न ही मूर्खों

की सभा में बैठना चाहिए और न ही ऐसे पण्डित से वाद-विवाद करना चाहिए जिसे आत्मज्ञान न हो।

मूरिष सभा न बैसिबा अवधू पंडित सो न करिबा बादं।
राजा संग्रामे झूझ न करबा हेलै न खोइबा नादं।। (सबदी-121)

जो पत्नी के मर जाने पर योगी होने का दम्भ भरता है, वह योगी नहीं होता है। जो साध ु का वेश धारण कर भिक्षा माँगकर अपने पेट की आग को शान्त करता है, वह साधु नहीं होता है। जो धन रहते हुए दान नहीं करता और धन के नष्ट हो जाने पर अपने को त्यागी कहता है, वह दानी नहीं होता। योगी में संयम, साधु में सदाचार और दानी में त्याग-वृत्ति होनी चाहिए। इसी सन्दर्भ में गुरु गोरखनाथ जी का यह छन्द ध्यातव्य है-

रांड मुवा जती, धाये भोजन सती धन त्यागी।
नाथ कहै ये तीन्यौ अभागी।। (सबदी-247)

सूर्य अर्थात् पिंगला नाड़ी से दायां स्वर चलने पर हमें भोजन करना चाहिए। चन्द्र अर्थात् इड़ा नाड़ी से बायाँ स्वर चलने पर ही हमें शयन करना चाहिए। दोनों के चलने पर पानी नहीं पीना चाहिए। जीवता अर्थात् आत्मा के नीचू मूंवा (शरीर) को बिछाना चाहिए। शरीर के नीरोग रहने पर ही परमात्म-चिन्तन हो सकता है।

सूरजे षायबा चंद्र सोयबा उभै न पीबा पांणी।
जीवत कै तलि मूंवा बिछायबा यूं बोल्या गोरष बांणी।। (सबदी-194)

आत्मज्ञान के महत्त्व को मानव जीवन का उद्देश्य बताते हुए गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं कि जो अधूरा ज्ञान वाला है और जिसने शरीर को ही अपना रूप समझ लिया है वह व्यर्थ तर्क-वितर्क का आश्रय लेकर कड़े शब्दों का प्रयोग कर अपने अज्ञान को छिपाता है। आत्मज्ञानी आत्मा को अपना स्वरूप समझता है और परमात्मा से अभिन्न हो जाता है। यहीं उसे कैवल्य पद की प्राप्ति होती है।

षंडित ग्यानी षरतर बोलै सति का सबद उछेदै।
काया के बलि करड़ा बोलै भीतरि तत्त न भेदै।। (सबदी-205)

मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है वह चाहे तो पुण्याचरण कर परमब्रह्म से साक्षात्कार कर जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पा सकता है अथवा पापाचरण कर अपने को बन्धन में पड़ा रहे। अतः गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं कि व्यक्ति को काम, क्रोध और लोभ से दूर ही रहना चाहिए।

जैसी मन उपजै तैसा करम करै।
काम क्रोध लोभ लै संसार सूंतां मरै।। (पद-5-1-2)

गुरु गोरखनाथ जी ने परमब्रह्म के सन्दर्भ में बताया है कि वह परमात्मा धरती, गगन, चन्द्रमा, सूर्य, दिन और रात दिक्कालातीत है। वह अणु से भी सूक्ष्म और विराट है। वह ओंकार ब्रह्म निराकार अनादि है। वह न वृक्ष है और न उसकी आश्रित बेल-माया है। यह पत्र, पुष्प और फल भी नहीं है। वह साखी और शब्द से भी अतीत है। वह न चेला है, न गुरु है।

कहा बूझै अवधू राई गगन न धरनी।
चंद न सूर दिवस नहीं रैनी।
ॐकार निराकार सूक्षिम न अस्थूलं।
पेड़ न पत्र फलै नहीं फूलं।
डाल न मूल न वृष न बेला, साषी न सबद गुरू नहीं चेला।

इसी पद में ब्रह्म के सन्दर्भ में कहते हैं कि यह तत्त्व ज्ञान और ध्यान से भी अभिव्यक्त नहीं होता है। योग और युक्ति से भी यह तत्त्व अभिव्यक्त नहीं होता है। यह पाप-पुण्य के द्वन्द्व से सर्वथा निर्लिप्त है। मोक्ष और मुक्ति से भी सहज शून्य है। न इसका जन्म होता है न इसकी मृत्यु होती है। न उसको जन्म देनेवाला कोई पिता है और न पोषण और पालन करने वाली माँ ही है। मत्स्येन्द्र योगेश्वर के शिष्य गोरखनाथ जी कहते हैं कि उसे भाव और भक्ति से भी नही ंसमझा जा सकता।

ग्यानें न ध्याने जोगे न जुक्ता, पापे न पुंने मोषे न मुक्ता।
उपजै न बिनसै आवै न जाई, जुरा न मरण वाके बाप न माई।।
भणत गोरखनाथ मछींद्र ना दासा
भाव भगति और आस न पासा।। (गोरखबानी, पद - 35)

महायोगी गोरखनाथ जी ने भारतीय समाज को ठीक से देखा, जाना और समझा था और उसके खण्डित होते हुए रूप से परिचित थे। यह समाज बौद्ध, जैन, द्वैत, अद्वैत, शैव-वैष्णव, निर्गुण-सगुण और कर्मकाण्डों के कारण विभिन्न वर्गों में विभाजित था। अनेक प्रकार की रूढ़ियों और पाखण्डों ने समाज को दिग्भ्रमित कर रखा था। उन्होंने देखा यह समाज स्वर्ग-नरक के कल्पना-चक्र में उलझा हुआ है। पाखण्डी स्वर्ग-नरक का भेद बताकर जनता का शोषण कर रहे हैं। ऐसे समाज को एकता के सूत्र में पिरोते हुए उन्होंने योग-साधना के माध्यम से जीव को जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

गुरु गोरखनाथ जी का जीवन-चरित लोकोपकारक रहा है। लोक-कल्याण के लिए उन्होंने हठयोग का प्रवर्तन किया और जन-सामान्य की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

उपर्युक्त छन्दों में भाषा, भाव और शिल्प की दृष्टि से भोजपुरी के छन्द अत्यन्त सामर्थ्यशाली हैं। भोजपुरी के क्रिया-पद एवं अन्य पद पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुए हैं जिन्हें लिखना सम्भव नहीं

है। कुछ पद ऐसे हैं जो आज भी भोजपुरी लोक में प्रयुक्त होते हैं और कुछ का थोड़ा रूप बदल गया है। भाव की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का सार्थक प्रयोग दीख पड़ता है। ब्रह्म, जीव, जगत्, माया की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भोजपुरी के शब्द दर्शनीय हैं। लोक–व्यवहार और जन–सामान्य को सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाले उपदेशों के छन्द भोजपुरी में भी हैं। लोक–कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले महायोगी गुरु गोरखनाथ जी से जो काव्य–परम्परा चली थी वह आज भी गतिमान है। भोजपुरी के प्रथम कवि गुरु गोरखनाथ जी के चरणों में प्रणाम करता हूँ।

सन्दर्भः

1. सिंह, दुर्गाशंकर प्रसाद – 'भोजपुरी के कवि और काव्य', पृष्ठ 17
2. द्विवेदी, पं. हजारी प्रसाद – 'नाथ सम्प्रदाय', पृष्ठ 98
3. सिंह, दुर्गाशंकर प्रसाद – 'भोजपुरी के कवि और काव्य', पृष्ठ 18

लोकभाषा एवं नाथपंथ

अनुज प्रताप सिंह*

लोकभाषा से आशय है- क्षेत्रीय भाषा, मातृभाषा, जनभाषा, वंशानुगत भाषा, जन्मभाषा, व्यावहारिक भाषा, घर की भाषा, घरू भाषा आदि। पण्डितों की साहित्य-भाषा के साथ-साथ लोकभाषा की सहजधारा भी अनवरत चलती रहती है। जब दोनों में अन्तर आ जाता है, तो प्रभावशून्यता बढ़ने लगती है। इस दशा में पण्डित मण्डली लोकभाषा का सहारा लेकर काव्यशिल्प में नवजीवन डालती है। साहित्य-भाषा के निर्माण में अनेक व्यक्तियों का हाथ रहता है। साहित्य-भाषा निःसन्देह अपना भण्डार बढ़ाने के लिए पूर्ववर्ती साहित्य और लोकभाषा का सहारा लेती है। छन्द और लय के लिए भाषा में परिवर्तन भी किया जाता है। तत्सम, तद्भव और लोकभाषा तथा विदेशी भाषाओं को लेकर नाथपंथी अपनी रचना करते रहे हैं। नाथों की भाषा में जनपदीय भाषिक तत्त्व और सिद्ध-सामन्तकालीन मानक हिन्दी का स्वरूप है। इस मिश्रण में लोकभाषाओं का सहज संवर्धन हुआ। वे लोकभाषा के साथ-साथ साहित्य-भाषा भी बनीं। "प्राकृत के पुराने रूपों से लदी हुई अपभ्रंश जब लद्धड़ होने लगी तब शिष्ट काव्य प्रचलित देशी भाषाओं से शक्ति प्राप्त करके ही आगे बढ़ सका। यही प्राकृतिक नियम काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में भी अटल समझना चाहिए। जब-जब शिष्टों का काव्य पण्डितों द्वारा बँधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवनतत्त्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगी।"[1] जब संस्कृत भाषा मात्र विद्वानों की भाषा रह गयी, प्राकृत भाषा का मर्म नहीं मिलता था, तो विद्यापति ने देसिल बअना जो सबको प्रिय थी, ऐसी अवहट्ट भाषा में उन्होंने 'कीर्तिलता' की रचना की-

सक्कय भाषा बहुअन भावइ पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल बअना सब मिट्ठा, तै तैसन जम्पओ अवहट्ठा।।

देसिल बअना (लोकभाषा) को उन्होंने बाल चन्द्रमा के समान कहा है। दोनों को दुष्टों की हँसी प्रभावित नहीं कर पाती है। बाल चन्द्रमा (द्वितीया का चन्द्रमा) भगवान् शंकर के सिर पर

---

*मीरा भवन, 1228/ए वार्ड-9, राजा विजयपुर कोठी, सिविल लाइन, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश, पिन-231001

सुशोभित होता है, तो यह निश्चित रूप से नागर लोगों के मन को मुग्ध करती है-

बालचन्द विज्जावइ भाषा, दुहु नहिं लग्गइ दुज्जन हाँसा।
ऊ परमेसर हर सिर सोहइ, ई निणच्चइ नाअर मन मोहइ।।

अवहट्ट भाषा सिद्ध-सामन्तकालीन प्राकृत-अपभ्रंश और मध्यकालीन हिन्दी के बीच की कड़ी है। विद्यापति सरहदी कवि और अवहट्ट सरहदी भाषा है। नाथों की रचनाएँ भी इसी के आगे-पीछे हुई होंगी।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। पालि-500 ई.पूर्व से प्रथम ई. तक, प्राकृत-1-500 ई. तक, अपभ्रंश- 500-1000 ई. तक। अवहट्ट 1000 ई. के उपरान्त। सच है कि बोलचाल/लोकभाषा से ही कालक्रम से वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ट का विकास हुआ होगा। अत: हिन्दी का विकास लोकभाषाओं से हुआ। नाथों की रचनाएँ- संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट और मिश्रित हिन्दी में हैं।

मार्कण्डेय ने 'प्राकृत सर्वस्व' में अपभ्रंश के 27 भेद लिखा है, पर सबका पता नहीं चलता है। मुख्य नागर, आभीर और ग्राम्य हैं। मार्कण्डेय ने भी तीन भेदों को मुख्य माना है- नागर, उपनागर और व्राचड़। आधुनिक भाषाओं एवं बोलियों का विकास इस प्रकार हुआ-

1. ब्राचड़ - सिन्धी, 2. कैकय - लहंदा, 3. टक्क - पंजाबी, 4. पश्चिमी शौरसेनी - गुजराती, राजस्थानी, पहाड़ी, 5. पूर्वी शौरसेनी - पश्चिमी हिन्दी, 6. अर्द्धमागधी - पूर्वी हिन्दी, 7. पश्चिमी मागधी - बिहारी, 8. पूर्वी मागधी - बंगला, असमिया, उड़िया, 9. महाराष्ट्री - मराठी।

नाथपंथियों में अभूतपूर्व लोकचेतना है। इसी से उन्होंने साहित्यिक भाषा में लोकभाषा से सर्वाधिक शब्दावली ली है। उनकी इस भाषिक क्रान्ति ने लोकभाषाओं को पर्याप्त संवर्द्धित किया। समाज-सुधार और अपने पंथ के प्रचार-प्रसार हेतु उन्होंने पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की बोलियों को लिया। "हिन्दी साहित्य और भाषा की मूल चेतना लोकात्मक है। इस लोकात्मक चेतना की जड़ें गोरखनाथ की भाषा में निहित हैं। लोकचेतना का सम्बन्ध शास्त्रों से नहीं होता, आभिजात्य वर्ग के संस्कारों से भी नहीं होता। उसका सम्बन्ध जीवन्त लोक-अनुभवों से होता है, अपनी जमीन अपनी मिट्टी से होता है।"[2] सामन्ती परम्परा से विरत होकर लोकमंगल के लिए लोक की विविध समस्याओं को आत्मसात कर नाथों और सिद्धों ने अपनी रचनाओं से समाधान देते रहे हैं। यहीं से हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ होता है। सबके मूल में लोकचेतना और लोकहित है। ऐसे साहित्य को धार्मिक और साम्प्रदायिक कहकर टालना संगत नहीं है। साहित्य का धर्म से जुड़ना शुभ है। गम्भीरता से देखने पर नाथ-सिद्धों की अनुभूति, साधना, चिन्तन और अनुभवों का पता चल जाता है। नाथों का सहज अनुभव लोक-व्यवहार का अनुभव है। इसी से उनकी भाषा लोक-चेतना की है। उनके

उपदेश लोकमंगल के हैं-

जिभ्या इन्द्री एकै नाल। जो राषै सो बचे काल। (संयमित आहार)
मति ग्यानी न करसि गरब। जिभ्या जीती जिन जित्या सरब।।[3]

जीव क्या हतिये रे प्यंड धारी।
मारिलै पंचभू म्रगला। चरै थारी बुधि बाड़ी।
जोग का मूल है दया दाण।
कथंत गोरष मुकति रे मानवा मारि लै रे मन द्रोही।
जाकै बप बरण मास नहीं लोही।[4] (मांस, मदिरादि का परित्याग)

पहले आरम्भ छाड़ौं काम क्रोध अहंकार। मन माया विषै विकार।
हंसा पकड़ि घात जिनि करौ। तृस्नां तजौ लोभ परहरौ।।[5] (संयमित आचार-विचार)

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। काम-क्रोध न करिबा संग।
हसिबा खेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राषि आपना चित।[6] (संयमित जीवन-निर्वाह)

कोई वादी कोई विवादी जोगी कौ वाद न करनां।
अठसठि तीरथ संमदि समावै यूँ जोगी को गुरुमषि जरनां।।[7] (संयमित व्यवहार)

पथ में प्रणऊं गुरु के पाया। जिन मोहि आत्म ब्रह्म लषाया।
सतगुरु सबद कह्या तै बुझ्या तृहूं लोक दीपक मनि सूझ्या।।[8] (सत्संग)

षायें भी मरिये अणषंये भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये।
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ सास।।[9] (मध्यम मार्ग का अनुसरण)

हेमचन्द्र को 12वीं शती का व्याकरणाचार्य माना जाता है। उन्होंने अपने अपभ्रंश व्याकरण में आकारान्त संज्ञा और क्रिया रूपों का उल्लेख किया है- 1. ढोल्ला=दूल्हा 2. बारिया=बरजा, रोका 3. भल्ला=भला 4. हुआ=हुआ 5. मारिआ=मारा।

इसी प्रकार अपभ्रंश व्याकरण में ब्रजभाषा के उकारान्त पद मिलते हैं- 1. माणु=मानु, 2. विहाणु=विहानु, 3. होइ=होइ (8/4/330/2)।

"लोक-जीवन के स्तर पर कुरु जनपद में कौरवी और ब्रज जनपद में ब्रजभाषा अपनी-अपनी जननी - अपभ्रंशों से जन्म ले चुकी थीं। रमते योगी उन जनपदों में भ्रमण किया करते थे। अतः नाथपंथी योगियों तथा कबीर आदि सन्त कवियों की भाषा में कौरवी तथा ब्रजी के रूप समाविष्ट हो गये थे। गोरखनाथ तथा कबीर की वाणियों में भाषा के रूपों में कौरवी तथा ब्रजी का मिश्रण

दिखाई पड़ता है।"[10] गोरखनाथ की भाषा में कौरवी की आकारान्त भूतकालिक क्रियाओं का ही बाहुल्य है। नाथ-सिद्धों की भाषा मुख्यतः आदिकालीन खड़ी बोली है।

डॉ. कमल सिंह ने अपने शोधकार्यों से सिद्ध किया है कि हिन्दी भाषा का विकास 6 कड़ियों में 11वीं से 17वीं शताब्दी तक हुआ- खड़ी बोली की प्रथम कड़ी- राउरबेल की भाषा, दूसरी कड़ी- गोरखनाथ की भाषा, तीसरी कड़ी-खुसरो की हिन्दी, चौथी कड़ी- कबीर की भाषा, पाँचवीं कड़ी- कुतुबशाह की भाषा, छठीं कड़ी- दक्खिनी हिन्दी। यह विभाजन बहुत क्रमबद्ध नहीं लगता है। रचनाओं के पाठभेद भाषायी समस्या उत्पन्न करते हैं। राजस्थान तथा अन्य ग्रन्थागारों में अद्यावधि अनेक पाण्डुलिपियाँ अछूती पड़ी हैं। इनकी भाषा में मानक और बोली रूप दोनों हैं। दोनों को अलग-अलग करना अति दुरूह है, परन्तु यह सत्य है कि मानक/साहित्यिक या काव्यभाषा की मूल प्रकृति जनपदीय बोली ही होती है। प्रायः मानक भाषा रूपों का विकास अनेक बोलियों से होता है अथवा उत्तम रचना में स्थापित होकर बोलियाँ भाषा हो जाती हैं।

नाथपंथ और उसका साहित्य पृथ्वी के विशाल भू-भाग पर फैला हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्धों और नाथों का समय 7वीं से 14वीं शताब्दी तक समझना चाहिए। वैसे इनकी भाषा में उक्त अवधि के उत्तर के रूप भी मिलते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश का काल था। भाषा का स्वरूप तद्भव और देशज प्रधान था। नाथयोगियों और सन्तों ने इसको सबसे अधिक उपयोग में लाने का कार्य किया। अपनी साधना और चिन्तन को इससे प्रचारित-प्रसारित किया। इससे इसको लोकप्रियता मिली। नाथपंथी/कनफटा साधु आसाम, बंगाल, नेपाल, भूटान और उड़ीसा से आज के पश्चिमी पाकिस्तान, अफगानिस्तान और लंका तक फैले हुए थे। काबुल में अनेक नाथपंथी हैं। उनके अनेक सुरक्षित मठ हैं। उनकी स्वस्थ शिष्य-परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती आ रही है। एक समय वृहत्तर भारत में नाथपंथी अति लोकप्रिय थे। इसी से नाथ साहित्य में भाषा-वैविध्य है; एक ओर संस्कृत तो दूसरी ओर प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट, बोली रूप तथा असमिया और बंगला के कुछ रूप हैं। नाथों ने बोली रूप को सर्वाधिक ग्रहण किया।

13वीं ई. तक 43 नाथ-सिद्धों की जीवनियाँ स्थान, रचनाएँ, चित्र और साधना के चमत्कार के साथ मिलती हैं। काबुल, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, राजस्थान और महाराष्ट्र तक फैली हुई नाथपंथ की गद्दियाँ उसके भाषा-क्षेत्र की सीमा बताती हैं। यहाँ की लोकभाषाएँ नाथों नाथों की रचनाओं में मिलती हैं। इसके साथ ध्यातव्य है कि भारत की सम्पूर्ण भाषाओं में मत्स्येन्द्र और गोरखनाथ सम्बन्धी कहानियाँ, किंवदन्तियाँ और लोकोक्तियाँ मिलती हैं। वे वृहत्तर भारत के महापुरुष थे। अम्बाला, हैदराबाद और रंगपुर में गाने-बजाने वाले, कांगरा में नग्नावस्था के औघड़, मध्य प्रान्त के शीशा-कंघा, मूँगे आदि को बेचनेवाले, बंगाल और आसाम के जुलाहे, बम्बई में नाथों के भेष में घूमने वाले, उत्तर प्रदेश के जोगी, भरथरी साधु और

भगत आदि नाथपंथियों के अवशेष हैं। अतः नाथ घर-घर में हैं। गुजरात में नवनाथ की कथा सत्यनारायण कथा के समान लोकप्रिय है। नागपंचमी को नवनाथों की कथा और नाग-पूजन का वहाँ विशेष महत्त्व है।

नाथपंथी घुमन्तू रहे हैं। वे घूम-घूमकर योग, वैराग्य और सदाचार के सन्देश/उपदेश प्रवचन और गीतों से दिया करते थे। नाथपंथी 12 पंथों में बँटे हुए हैं। यह जीवन्त पंथ है। इसका स्वस्थ साहित्य भारतीय भाषाओं में सुरक्षित है। गोरखबानी और नाथ-सिद्धों की बानियाँ हिन्दी में भी प्रकाशित हैं।

नाथों की भाषा लोकाश्रित एवं मिश्रित है। अद्यावधि हिन्दी में इनकी रचनाएँ सर्वाधिक प्राप्त हैं। नाथों ने लोकभाषाओं को मानक, साहित्यिक एवं परिष्कृत रूप देकर लोकभाषा-संवर्धन किया।

गोरखनाथ की रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ 15वीं शताब्दी के पूर्व की नहीं मिलती हैं जबकि वे इसके पूर्व के थे। फलतः उनकी तथा अन्य नाथों की भाषा-काल पर मतभेद है। भाषा-रूप भी परवर्ती है। संस्कृत और उर्दू-फारसी के भ्रष्ट रूप तथा विविध बोलियों का मिश्रण है। अतः नाथ-सिद्धों की भाषा सहज या जनमानस की भाषा पर आश्रित है। चौरासी सिद्धों में गोरक्षपा नवें स्थान पर हैं। "सिद्धों की भाषा जनसमुदाय की भाषा का आश्रय लेकर अपभ्रंश की उस अवस्था का संकेत करती है जिसमें आधुनिक भाषा के चित् विकसित होने लगे थे।"[11] योगियों और सन्तों की भाषा अत्यन्त व्यापक होती है। वह भाषा एकभाषा, लोकभाषा न होकर मिश्रित होती है, उसमें से सभी रूपों को अलग करना कठिन होता है, जैसे पंचामृत से दूध, दही, घी, शहद और तुलसीदल को। आज नाथों की मूल भाषा सुनने को नहीं मिल सकती है, मात्र पढ़ने को मिल सकती है। अतः उसका साहित्य रूप ही मिल सकता है लिपिबद्ध हो सका है। श्रुत-भाषा का अध्ययन सरल होता है; जैसा सुना वैसा लिखा। नाथों ने अपने समय की व्यावहारिक भाषा को लिखा है। शास्त्र स्वरूप के साथ उन्होंने लोकरूप को मिलाया है। उस समय लोकभाषा का ऊँचा स्थान नहीं था, परन्तु नाथों ने महासमन्वय किया। नाथपंथ में जाति का कोई स्थान नहीं है। फलतः सभी जाति और वर्ग के लोग इस पंथ में दीक्षित हुए जिससे सबकी अपनी भाषा/बोली की भी इसमें प्रतिष्ठा हुई। फलतः लोकभाषा को सार्वभौमिक रूप मिला।

प्रारम्भ में नाथों की बानियाँ मौखिक रूप में सुरक्षित थीं, कालान्तर में लिपिबद्ध हुईं, इसी से पाठभेद है; ध्वनि-भेद भी है। लिपिकारों ने कुछ अपना भी मिलाया होगा।

पश्चिमी हिन्दी की उपबोलियों और बोलियों में खड़ीबोली और ब्रजभाषा का जन्म कब हुआ, कुछ निश्चित नहीं। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार खड़ीबोली आकारान्त और ब्रजभाषा उकारान्त एवं औकारान्त है। इनके दर्शन खड़ी बोली और ब्रजभाषा के संज्ञा, विशेषण और क्रिया रूपों

में स्पष्ट हो जाते हैं–

	खड़ी बोली		ब्रजभाषा
संज्ञा –	खुरपा	–	खुरपौ
विशेषण –	बुरा	–	बुरौ
क्रिया –	देखा, देख्या	–	देखौ, देख्यौ

सिद्ध हेमचन्द्र के 'शब्दानुशासन' में उद्धृत छन्द खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रारूप (लोकभाषा) मिल जाते हैं। अवधी और ब्रजभाषा में भी 'क्ष' के विकसित वर्ण 'ख' और 'छ' दोनों मिल जाते हैं। ब्रजभाषा में भिक्षा/भीख भिच्छा रूप बनते हैं। अवधी में लक्ष्मण के लिए लखन, लछन दोनों शब्द प्रयुक्त होते हैं। गुरु-परम्परा से प्राप्त संस्कृत शब्दों को नाथों ने प्रयुक्त करना चाहा, पर तत्कालीन भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप न होने के कारण इनका तत्सम प्रयोग सम्भव न हो सका। लोक में प्रचलित भिच्छा और भिक्खा को लिया गया। ष=ख की प्रवृत्ति अवहट्ट से आयी होगी- षारै, षिरै, षाटै, षटपट, षंडि, भूषै, गोरष, गगन-सिषर, षेलिबा, सुरषा, बिषम, षोषै, विष, षीषा (खीखा) आदि। लोकभाषा और साहित्य भाषा की ध्वनियाँ समवेत रूप से मिलती हैं- लक्ष्मण/लखन/लक्ष्मन आदि।

लोकभाषा की ध्वनि/उच्चारण को नाथों ने लिखित और साहित्यिक रूप देकर साहित्यिक ध
ारा से जोड़ा- अय, ऐ, लय, लै, निरभै, नृभै, परचै, हिरदै आदि। ये उच्चारण प्राकृत और अपभ्रंश में भी हैं, पर संस्कृत में नहीं हैं। 'व' और 'ब' के वैकल्पिक प्रयोग बानियों में हैं-

हबकि न बोलिबा, ढबकि न चलिबा धीरे धारिवा पाँव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा, भनत गोरखनाथ।।
भरया ते धीरं झलझलंति आधा।[12]

आज भी लगभग सभी क्षेत्रीय बोलियों में संस्कृत शब्दों को इसी प्रवृत्ति के अनुसार ग्रहण किया जाता है-

संस्कृत	–	लोकभाषा	संस्कृत	–	लोकभाषा
त्रिवेणी	–	तृबेणी	निरबानां	–	निरबान
पूरव	–	पूरब	वाणी	–	बांणी
वास	–	बास	रवि	–	रबि

'श', 'स' के उच्चारण में भी भेद है। श, ष प्राकृतों में 'स' हो गया है। पश्चिमी हिन्दी और अवधी में इस प्रकार व्यवस्था है-

दिशा – दिसा, शरीर – सरीर, ष – स, ख -- तृष्ना–तृसना। इ/य की विकल्पता पर्याप्त है। स्वतंत्र लोक प्रयोग है। 'गोरखबानी' में पर्याप्त हैं- ज्यंद–जिंद, प्यंजरै–पिंजरै, प्यंड–पिंड। गोरखबानी में स्वरों की अनुनासिकता सार्थक और निरर्थक दोनों है, जैसा कि लोक में मिलता है- ड/ड़, ढ/ढ़, न/ण। नाथयोगियों में स्वर–व्यंजन–संयोग बोलचाल की हिन्दी के निकट है- गाइय, दोऊ, आओब, आइबि, कउवा, विओगी, पतिआई, कोइल आदि। य/व की विकल्पता तत्सम और तद्भव दोनों रूपों में है। र/र् की विकल्पता है- भ्रम–भरम, कर्म–करम, धर्म–धरम। द्वित्व का प्रभाव है। नाथ साहित्य में तत्सम (संस्कृत) अर्द्धतत्सम, तद्भव और लोकभाषा की शब्दावली है। अतः संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और लोकभाषा का मिश्रण है। ला, बा प्रत्ययी पद पूर्वी भोजपुरी हैं। जेणै=जिसको, तेणै=तिसको पश्चिमी भाषा–रूप हैं। कौरवी–वाँगरू में कर्म, सम्प्रदान के लिए ने और करण कारक के लिए नै का प्रयोग होता है-'चोरी नैं आणी गाई' अर्थात् चोरी से गाय लायी गयी। राजस्थानी में नइं कर्म कारक के लिए प्राचीनकाल से ही प्रयुक्त होता आ रहा है। ले, लैं क्रिया के रूप बुन्देली में भी चलते हैं- 'पंच तत के कंथा गढी' अर्थात् पाँच तत्त्वों से शरीर गढ़ा गया। दक्खिनी तथा पुरानी पंजाबी में कौ/कूं मिलता है, खड़ी बोली के 'को' के समान। दक्खिनी कुमाऊनी में 'थैं', गुजराती और राजस्थानी में 'थीं' रूप है। 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग सिद्ध करता है कि नाथपंथी पश्चिमी भारत के अधिक थे। आइबा, ग और इला रूप पूरब–पश्चिम दोनों में चलते हैं। हसिबा–हसना चाहिए, षेलिबा–खेलना चाहिए। निष्कर्ष में नाथों की भाषा में पंजाबी, राजस्थानी, पहाड़ी, ब्रजभाषा, कौरवी, खड़ीबोली, मराठी, गुजराती और भोजपुरी (मागधी) भाषा/बोली रूप प्रतिष्ठित है। नीचे के कुछ उदाहरणों को प्रमाण के लिए देखा जा सकता है। इनमें रेखांकित अंश लोकभाषा के हैं-

<u>गोरखनाथ</u>

<u>कवण</u> <u>केरा</u> तुरंक हाथी <u>कवण</u> <u>केरी</u> नारी।
<u>नरकि</u> <u>जातां</u> कोई न <u>राखअे</u> <u>हियडई</u> <u>जोई</u> विचारी।। (15वीं शती)

कोमल पिण्ड <u>कहावै</u> चेला। कठिन पिण्ड सो <u>ठेलापेला</u>।
जनपिंड <u>कहावै</u> बूढ़ा। कह गोरख ये तीनों <u>मूढ़ा</u>।। (17वीं शती)

<u>हसिबा</u> <u>षेलिबा</u> <u>रहिबा</u> रंग। काम क्रोध न <u>करिबा</u> संग।
<u>हसिबा</u> <u>षेलिबा</u> <u>गाइबा</u> गीत। <u>दिढ</u> करि राषि अपना <u>चीत</u>।। (गोरखबानी–7)

सारमसारं गरुर गभीरं गगन <u>उछलिया</u> नादं।
मानिक पाया <u>फेरि</u> <u>लुकाया</u> झूठा बाद–बिबादं। (गोरखबानी–12)

गगन मंडल में ऊँधा कूबा तहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होइ सु भरि-भरि पीबै निगुरा जाइ पियासा।। (गोरखबानी-23)

मन मुद्रा के रेष, जगत गुरु मन ही मन देष।
उलटैगा मनमन कूँ कहैगा, तव काच पलटि कंचन होई रहैगा।।

(ब्रिटिश लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया की प्रति से, सं. 202)

अन्य नाथ

माली से भक्त माली को।
सीचे सहज कियारी।।

उनमनी कला एक पुहुप निपाया।
आवागवन निवारी। - (चौरंगीनाथ)

\+ + +

आपा मेटिला सतगुरु थापिला।
न करिबा जोग जुगति का हेला।
उनमन डोरी जब षैचीला।
तब सहज जोति का मेला। (नागार्जुन)

\+ + +

नीचैं षौज्या नीड़ा पाणी।
ऊचैं का विस मूवा।
सबद् विचारै तै बड़ कहिए।
दिन का बड़ा न हूवा।। (चुड़करनाथ)

\+ + +

किसका बेटा किसकी बहू।
आप सवारथ मिलिया सहू
जेता फूला तेता काल।
चरपट कहै ए संऊआल जंजाल। (चरपटनाथ)

\+ + +

एक <u>अचंभा</u> ऐसा हूआ। नागरि मांहि <u>उंसारवा</u> <u>कूवा</u>।
बोछी लेज पहूँचे नांही। लोक पयासा <u>मरि</u> <u>मरि</u> <u>जाहीं</u>। (जालंध्रीपाव)

+ + +

तीजा संख विचारह पाया। षेचरी मुद्रा लागंत माया।
माया त्यागौ राषौ काल। इन उपदेसै बंचिये जम काल। (भरथरी)

लोकभाषा संवर्धन में नाथपंथ का अमिट योगदान है। गोरखनाथ नाथपंथ के संस्थापक और प्रवर्तक थे। घूम-घूमकर उन्होंने अपनी साधना और विचारों को प्रचारित-प्रसारित किया। उन्होंने नाथपंथी योगियों की एक लम्बी संख्या तैयार की। अपने समय के वे सबसे बड़े (चक्रवर्ती) आध्यात्मिक पुरुष थे। वे अपनी साधना और चिंतन को लोक में उतार रहे थे; शिष्यमण्डली बना रहे थे; साधना-केन्द्र स्थापित कर रहे थे। वे सच्चे अर्थों में लोकनायक थे। प्राणिमात्र के मंगल के वे दीवाने थे। वे अमरकाया की बातें करते थे। स्वयं वे अमरकाया में आज भी हैं, ऐसी साम्प्रदायिक मान्यता है। अनेक घटनाएँ उनके साक्षात्कार से जुड़ी हैं। मेवाड़ के महाराणा वप्पा रावल को उन्होंने तलवार (खाँड़ा/षाँड़ा) दी थी, जो आज भी है। उससे उन्होंने अफगानिस्तान तक विजय प्राप्त कर ली थी। उनको एक सौ पुत्र थे जिनके वंशज रावल नाम से वहाँ आज भी हैं। नवनाथ कथा तथा अन्य ग्रन्थों से यह प्रमाणित होता है कि गोरखनाथ तथा अन्य नाथ अभी हैं।

उक्त कार्य-सम्पादन के लिए उन्होंने मिश्रित एवं विविध भाषाओं और बोलियों को माध्यम भाषा बनाया। सहज भाषा रूप को उन्होंने अपनी वाणियों में उतारा; उनके अनुयायियों ने भी तद्वत किया। "गोरख सहज जनभाषा में सब कुछ कहते हैं और दूसरे 'कवि' प्राकृत व्याकरण टटोलते हैं।"[13] "गोरखनाथ की वाणियों और उनकी भाषा का रूप संदिग्ध मानने के कारण ही कदाचित् उनकी ऐसी उपेक्षा हुई है। किन्तु विश्लेषण से यह निश्चित रूप से प्रमाणित हुआ है कि गोरखनाथ की वाणियों की भाषा पूर्वी हिन्दी न होकर -जैसा सामान्यतः माना जाता है - पुरानी खड़ी बोली है।"[14] अद्यतन शोधों से यह प्रमाणित हो गया है कि गोरखनाथ और उनके अनुयायियों की हिन्दी रचनाओं में पूर्वी हिन्दी के भी घटक हैं। "गोरख, नामदेव आदि की मिली-जुली बोलियों वाली भाषा से कबीर आदि सन्तों की 'सधुक्कड़ी' भाषा का विकास हुआ जिसमें पश्चिमी हिन्दी का ही बाहुल्य था।"[15] "उन्होंने (सिद्धों ने) भरसक उसी सर्वमान्य व्यापक काव्यभाषा में लिखा है जो उस समय गुजरात, राजपूताने और ब्रजमण्डल से लेकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की शिष्ट भाषा थी।......... पुरानी हिन्दी की व्यापक काव्यभाषा का शौरसेनी प्रसूत अपभ्रंश अर्थात् ब्रज और खड़ी बोली (पश्चिमी हिन्दी) का था।"[16] "आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी, इन दोनों अंचलों के भाषा रूपों के उदाहरण इन रचनाओं में मिल जाते हैं।"[17] "गोरखनाथ की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं, जिसके कारण उनके समय को निश्चित करना भी बहुत कठिन दिखाई

देता है। निम्नलिखित बातें भाषा के सम्बन्ध में प्रकट हैं-

1. भाषा अन्य सिद्धों की कविता जैसी नहीं है।
2. संस्कृत का प्रयोग अपने भ्रष्ट रूप में भी है।
3. अनेक बोलियों का उसमें पुट मिश्रित है।
4. कहीं-कहीं उर्दू-फारसी के भी भ्रष्ट रूप मिलते हैं।
5. भाषा सधुक्कड़ी है।"[18]

गोरखनाथ तथा अन्य नाथपंथियों की रचनाओं में 11वीं शताब्दी के उत्तरकाल की हिन्दी का स्वरूप निहित है जिसे आज खड़ी बोली कहते हैं। नाथों की भाषा में यत्र-तत्र मौलिक प्रयोग हैं, जैसे- विभिन्न आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए एक लौकिक 'श'/ आध्यात्मिक शब्दावली के प्रयोग, एक आध्यात्मिक तत्त्व के लिए एक ही लौकिक शब्द; पारिभाषिक शब्दावली तथा परसर्गों के प्रयोग आदि। आकारान्त - दिल्ली, मेरठ, हरियाणा, पंजाब, ओ/औकारान्त- ब्रजक्षेत्र, राजस्थान और गढ़वाल। बा/इला पूर्वी, न की अपेक्षा ण अधिक (पश्चिमी) प्रयुक्त है। अत: इसमें पश्चिमी भाषारूप अधिक है।

भाषिक निष्कर्ष

1. नाथपंथियों की भाषा पूर्वी हिन्दी है।
2. नाथपंथियों की भाषा पश्चिमी हिन्दी है।
3. नाथपंथियों की भाषा में कई बोलियों का मिश्रण है।
4. नाथपंथियों की भाषा में पुरानी खड़ी बोली है।

अत: नाथों की भाषा लोकजीवन से सर्वाधिक ली गयी है। उन्होंने लोकभाषा से मुहावरे, लोकोक्तियाँ, शब्द-शक्तियाँ, लोक-संस्कारों, अप्रस्तुत विधान, बिम्बविधान, प्रतीक, रूपक को लिये हैं। उन्होंने भाषा गढ़ने का अभूतपूर्व कार्य किया है। लोकभाषा में पहली बार सिद्धों ने साधना, चिन्तन और अनुभूति की इतनी ऊँची बातों को कहने का साहस किया। प्रमाण में उनकी शब्दावली है- गाय, बछड़ा, ऊँच, बाघ, खरगोश, बिल्ली, चूहा, साँप, आग, फल, डाल, कोंपल, मूल, फूल, धरती, गगन, गंगा, यमुना, चन्द्र, सूर, जल, पर्वत, अँगीठी, कोयला, रोटी, दूध, डुकरिया, घाट, सुनार, तोला (अनाज तौलने वाला), खेती, मेह, बनिज, ग्वालिया, पनिहारिन, ऊजड़ खेड़ा, चूल्हा, सास, बहू आदि। इनके पर्याय भी लोकजीवन के हैं। एक उदाहरण दर्शनीय है-

नाथ बोलै अमृत बांणी बरिषैगी कंबली भीजैगा पांणी।
गाड़ि पडरवा बांधिलै षूंटा, चलें दमांमा बाजिलै ऊँटा।

कउवा की डाली पीपल बासै, मूसा के सबद बिलइया नासै।
चले बटावा थाकी बाट, सोवै डुकरिया ठौरै षाट।
ढूकिले कूकर भूकिले चोर, काढ़े धणीं पुकारै ढोर।
ऊजड़ षेड़ा नगर मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी।
गगरी परि चूल्हा धूंधाइ, पोषणहारा कौं रोटी षाइ।
कंमिनी जलै अँगीठी तापै, बिचि बैसंदर धरहर कांपै।
एक जु रढिया रढती आई बहू बिवाई सासू जाई।
नगरी कौ पांणीं कूई आवे, उलटी चरचा गोरष गावैं।।[19]

उक्त उद्धरणों में सभी स्तर के शब्द हैं। आज भी ये शब्द कुछ परिवर्तन के साथ लोकभाषाओं में चलते हैं। इन्हीं में पंथ की जीवन्तता भी है।

सन्दर्भः

1. हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संस्करण-30, पृ. 326
2. गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कविः डॉ. कमल सिंह, पृ. 87
3. गोरखबानी, सबदी-219
4. गोरखबानी, सबदी-228
5. गोरखबानी, नरवै बोध-2
6. गोरखबानी, सबदी-20
7. गोरखबानी, सबदी-13
8. गोरखबानी, प्राणसंकली-1
9. गोरखबानी, सबदी-146
10. अम्बा प्रसाद 'सुमन', गोरखनाथ की भाषा का अध्ययनः डॉ. कमल सिंह, भूमिका पृ. 05
11. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहासः डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 65
12. गोरखबानी, पृ. 11
13. हिन्दी शब्दानुशासनः पं. किशोरीदास वाजपेयी, पूर्वपीठिका, पृ. 13
14. कुतुबशतक और उसकी हिन्दुईः डॉ. माताप्रसाद गुप्त (प्रस्तावना), पृ. 5
15. हिन्दीः उद्भव, विकास और रूप - डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. 240
16. हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 10-20
17. हिन्दी साहित्य का इतिहासः डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव, पृ. 203
18. गोरखनाथ और उनका युगः रांगेय राघव, पृ. 191
19. गोरखबानी, पद 47, पृ. 142

लोकभाषा में नाथपंथ

- रवीन्द्र श्रीवास्तव 'जुगानी भाई'* एवं अविनाश प्रताप सिंह**

चातुर्मास के कुछ महीनों को छोड़कर प्रारम्भ से ही भारतीय साधु-सन्त निरन्तर भ्रमण करते रहते थे इसी से उन्हें परिव्रात कहा जाता था। सदैव भ्रमण के कारण जनसाधारण से इनका सीधा सम्पर्क बना रहता था और उनसे सीधा संवाद भी होता रहता था। यह सब उन्हीं की बोली भाषा में सम्भव था। ये बोलियाँ ही उस क्षेत्र विशेष की लोकभाषा होती थीं। धीरे-धीरे ये बोलियाँ या लोकभाषाएँ इनकी वाणियों और उपदेशों में साफ-साफ दिखने लगीं। आपस में इन लोकभाषाओं का विधिवत आदान-प्रदान होता रहा। लोगों के भीतर अभिरुचि जगाकर अपनी बात ये सन्त-महात्मा भीतर तक प्रविष्ट करा देते थे। कहने को तो ये अपने मत या सम्प्रदाय का प्रचार कर रहे थे, लोगों के भीतर मानवता, प्रेम, सदाचार और सामाजिक समरसता का बीज उगा रहे थे परन्तु साथ ही साथ वे उन लोकभाषाओं का प्रकारान्तर से संवर्धन भी करते जा रहे थे। उसी प्राचीन प्रथा और परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य नाथपंथ ने भी अपने ढंग से सफलता के साथ किया और आज भी करता चला आ रहा है।

यह नाथपंथ क्या है? इसे विधिवत समझने के लिए सबसे पहले आस्तिकता, आत्मा की अमरता को ढंग से समझना होता है। आस्तिकता और पूर्वजन्म, पुनर्जन्म की अवधारणा के साथ योगी को ठीक से समझना होता है। भारतीय दर्शन में कई सन्त-महात्मा कालजयी माने गये हैं। इन्हें इतिहास के पन्नों में समेटा भी नहीं जा सकता। ये *'डेटलेस हैं परन्तु डेथलेस'* भी हैं। बाबा गोरखनाथ जी उसी परम्परा के थे। आज भी इतिहासकार इनके काल का निर्धारण करने में असमर्थ हैं। योगी कालजयी होता है क्योंकि-

> "खाद्यते न च काले न बाध्यते न च कर्मणा
> लाध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना
> निरांतव्ये, निरालंबे, निराहारे निराश्रयी
> योगी योग विधाने न पराब्रह्मणलीयते

*मीरा भवन, 1228/ए वार्ड-9, राजा विजयपुर कोठी, सिविल लाइन, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश, पिन-231001
**असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, गोरखपुर

क्योंकि-

महामुद्रा, महाबंध, महाबेधश्च खेचरी
उड्यानम् मूलबंधश्च बंधो जालंधरावृदं
कर्णी विपरीताख्या बज्रौली शक्तिचालनम्
इदं ही मुद्रा दशकं जरा मरण नाशनम्।।"

योग की ये उपरोक्त दस मुद्राएँ होती हैं जिन पर पूर्ण अधिकार कर सिद्ध होने के बाद मनुष्य जरा-मरण से मुक्त हो जाता है। नाथपंथ के कुछ योगी इनको जानते थे, परन्तु इसके दुरुपयोग को रोकने के क्रम में इसे अत्यन्त गोपनीय कर दिया। 'गोप्यं गोप्यं महागोप्यं' के सिद्धान्त का अनुसरण कर इसे लुप्त करा दिया। वैसे हठयोगी आज भी बिरले ही सही, देखने को मिल जाते हैं। काशी में तैलंग स्वामी जी ने सप्रमाण 360 वर्षों में अपना चोला छोड़ा। यहीं हठयोगी योगिराज देवराहा बाबा को देखा जा सकता है जिनका दर्शन करने जार्जपंचम तक इंग्लैण्ड से भारत पधारे। मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी चार पीढ़ियाँ तो दर्शनकर्ता के रूप में सामने ही हैं। प्रो. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय जी ने लिखा है योगबल से अनेक सिद्धों ने 700 से लेकर 1000 वर्षों तक का जीवन जिया है। निश्चय ही यह सब इतिहास के सामने चुनौती और साधारण समझ से बाहर का विषय बन जाता है।

नाथपंथ के आदि देवता भगवान् शिव हैं जो स्वयं लोकज्ञता के प्रतीक और योग तथा समस्त विद्याओं के प्रवर्तक हैं। इनके दो प्रमुख शिष्य थे मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ। जालन्धरनाथजी के शिष्य थे चरपटनाथ, गोपीचन्द और हाडानाथ। वहीं मत्स्येन्द्रनाथ जी के शिष्य थे गोरखनाथ। इनके शिष्य थे भर्तृहरि जिन्हें लोकभाषा में भर्थरी भी कहा जाने लगा। इन्हीं से आगे चलकर नौ नाथ और फिर चौरासी नाथ-सिद्धों की परम्परा शुरू हुई। तिब्बत के सिद्ध-सन्त तथा साईंनाथ योगियों की परम्परा भी यहीं से चली। प्राचीनकाल से चले आ रहे नाथपंथ को पहली बार सुव्यवस्थित कर जनसाधारण के बीच ढंग से पहुँचाने का कार्य बाबा गोरखनाथ जी ने किया। काबुल, कान्धार, सिन्ध, बलूचिस्तान, अरब देशों के साथ भारत में कच्छ से लेकर कश्मीर तक बाबा गोरखनाथ जी ने दीक्षा दी और भ्रमण किया। गोरखनाथ जी द्वारा प्रवर्तित योगिसम्प्रदाय बारह शाखाओं में विभक्त है जिनमें शिव और शाक्त दोनों ही मत के लोग समाहित हैं।

कहा जाता है कि इन्हीं कड़ियों से प्रेरणा लेकर सन्त कबीर ने अपने आपको अवाम में स्थापित किया। उनकी अक्खड़ता के पीछे ये नाथ योगी ही थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में- "सहजयानी सिद्धों और नाथपंथियों का अक्खड़पन कबीर में पूरी मात्रा में है।" कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोक में जितनी गहराई तक इनकी पैठ होती रही प्रकारान्तर से उसी गहराई तक लोकभाषा अपना स्थान बनाती रही। कनीफनाथ जी ने दीन, दलितों की भाषा को आगे बढ़ाकर

सांबर भाषा का प्रचार किया और साबरमंत्र सामने लाये। इन्हीं सन्तों ने लोक में रम कर अन्य उपादानों के अतिरिक्त लोकभाषाओं के संवर्धन में अद्‌भुत योगदान दिया। गुरुनानक, कबीर और गोरखनाथ जी का प्राय: आपस में संवाद होता रहता था। इसका सीधा प्रभाव भोजपुरी और पंजाबी पर पड़ता रहा। देश के विभिन्न स्थानों पर रहकर इन लोगों ने राजस्थानी, बघैली, बुन्देली के साथ बंगाल और उड़ीसा की जनभाषाओं का संवर्धन किया। अपने भोजपुरी क्षेत्र को ही लें- अकेले कबीर ने जितना योगदान भोजपुरी के विकास में दिया वह सामने है। कहना नहीं होगा कि जब हम कबीर की बात करते हैं तब प्रकारान्तर से नाथपंथ स्वत: सामने आ जाता है। भोजपुरी में चौमासा लिखने की परम्परा नाथपंथ से ही प्रारम्भ हुई।

हठयोगी देवराहा बाबा प्राय: भोजपुरी में ही अपने भक्तों को उपदेश दिया करते थे। उद्धरण भले ही वे संस्कृत साहित्य से देते थे परन्तु मूलस्वर उनका भोजपुरी ही था। सन्त की परिभाषा करते हुए वे प्राय: कहा करते थे कि-

संत सोई जो काया साधे। तज आलस अरु वाद-बिवादे।
गहे धारणा सब गति भारी। तजे विकलता स्तुति गारी।
क्षमावन्त धीरज को धारें। पांचों बस्तर मन के मारें।
त्यागे झूठ सांच मुख बोलें। चित स्थिर इत-उत नहिं डोलें।
तन जग में मन हरि के पासा। लोग भोग सों सदा उदासा।
जब सोयें जब सून्य में जब बोलें हरिनाम
जब बोलें तब हरिकथा संत करें निष्काम।

जरा अपने ही देख लें कितने भोजपुरी के या उससे निकट के शब्द मात्र इसी में मिल जायेंगे। इसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में मठ स्थापित कर जनसामान्य से घुले-मिले नाथ योगियों ने कश्मीर में दरद व पैशाची बोलियों का प्रयोग किया। धीरे-धीरे वही कश्मीरी भाषा शारदा लिपि में लिखी जाने लगी। उसकी लिपि बदलती चली गयी और धीरे-धीरे मुस्लिम प्रभाव बढ़ने से उर्दू में लिखी जाने लगी। वहीं सिन्धी जो आज विभाजन के बाद पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त की भाषा बनकर रह गयी उसे ब्राचड़ अपभ्रंश से बना माना गया है इसको सामान्य व्यवहार और बोलचाल में प्रयोग करते 'विचौली' नामक भाषा का विकास हुआ। इसके विकास में नाथपंथियों का अद्‌भुत योगदान है।

पंजाबी भाषा के विकास में नाथपंथ का अद्‌भुत योगदान रहा है। नाटेश्वरी पंथ जिसे लक्ष्मणनाथ पंथ कहा जाता है जिनकी 43 उपशाखाएँ हैं, ने पैशाची को अन्य सधुक्कड़ी भाषाओं से जोड़कर एक नयी भाषा का अनजाने में विकास कराया। बाद में यह पंजाबी बनी आज उसकी गुरुमुखी लिपि है। स्वयं गुरुनानक जी महाराज नाथ सन्तों से अत्यन्त प्रभावित रहते थे। उनका गुरु

गोरखनाथ जी महाराज से प्राय: संवाद भी होता रहता था। गोरखनाथ जी की एक प्रमुख शिष्या भगवती विमला देवी थीं। इन्होंने बंगाल में आई पंथ की स्थापना की। इस पंथ का प्रमुख पीठ दिनाजपुर जिले में गोरखकुई नामक स्थान पर है। इनकी कुल दस शाखाएँ हैं। मुख्य रूप से नाथपंथ के प्रचार के लिए इन महात्माओं ने जिस मागधी बोली का प्रयोग करना शुरू किया वही धीरे-धीरे बंगला भाषा बनती चली गयी और आज यह पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल की प्रमुख भाषा बन गयी।

आज के गुजरात और राजस्थान दोनों ही प्रान्तों में नाथपंथ के अलग-अलग कई पीठ हैं। इन्होंने स्थानीय बोलियों को माध्यम बनाकर जहाँ अपना संदेश आम जन तक पहुँचाया वहीं दोनों प्रान्तों के सन्धि-स्थल पर एक अलग 'भीली' नामक बोली का विकास किया। इस बोली में नाथ योगियों के व्यावहारिक शब्द तो हैं ही साथ ही सधुक्कड़ी के साथ मिलकर यह एक व्यापक स्वरूप लेती चली जा रही है। भीली का ही एक अलग स्वरूप है 'खानदेसी'। यह मराठी से अधिक प्रभावित है। राजस्थान के वैराग्यपंथ जिसके संस्थापक भर्तृहरि जी माने जाते हैं, ने इसके विकास में अद्‌भुत योगदान दिया है। इस वैराग्यपंथ की कुल 124 शाखाएँ हैं जो अलग-अलग ढंग से भीली और खानदेसी बोलियों का व्यापक प्रयोग करते रहे हैं। उड़िया जो मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न हुई मानी जाती है जिसे ओड़ी और उत्कली भी कहते हैं, उसके विकास में सत्यनाथ पंथ का अद्‌भुत योगदान है। आज की उड़िया के विकास का अधिकांश श्रेय प्रकारान्तर से सधुक्कड़ी बोलियों के साथ इस सत्यनाथ पंथ को भी दिया जाता है।

इस प्रकार यदि गम्भीरता से देखें तो पायेंगे कि अपनी लोकभाषाओं के संवर्धन में प्रकारान्तर से इस नाथपंथ का अद्‌भुत योगदान है। व्यवहार में जिस भाषा का प्रयोग होता रहता है वही भाषा जीवित रहती है। और जिस भाषा में विभिन्न भाषाओं का संगम होता रहता है उसका संवर्धन स्वत: होता रहता है। इसी को नेपाली भाषा में देखा जा सकता है। गुरु गोरखनाथ जी के माध्यम से नेपाली भाषा का सृजन हुआ। आज की नेपाली में लिपि भले ही हिन्दी हो परन्तु सधुक्कड़ी का विधिवत प्रयोग मिलता है। नेपाल, भारत, भूटान, म्यांमार तक अलग-अलग ढंग से यह बोली जाती है। आज भी गुरु गोरखनाथ नेपाल के राजगुरु माने जाते हैं।

दक्षिण भारत में तुलू आदि बोलियों का संवर्धन इन नाथपंथियों ने प्रकारान्तर से किया। नाथपंथ संवाद और परिसंवाद के माध्यम से लोगों में पहुँचती रही। इसकी वाचिक परम्परा बड़ी सशक्त रही है। इसीलिए यह अपने तो विकसित होती ही रही साथ ही जिन लोगों के बीच तथा जिनकी बोलियों में संवाद होता रहा वे बोलियाँ भी दिनोदिन विकसित होती चली गयीं। कहीं-कहीं ये लोकभाषाएँ व्यापकता को प्राप्त कर राज्य की राजभाषा का स्वरूप भी लेती रहीं।

व्यवहार में देखें तो पायेंगे कि भाषा साहित्य पर अवलम्बित नहीं रहती जबकि साहित्य को

भाषा पर अवलम्बित रहना पड़ता है। एक विशिष्ट साहित्यिक कृति एक विशिष्ट सांस्कृतिक भाषिक समाज की सामूहिक सम्पदा के साथ उसकी अपनी अभिव्यक्ति भी होती है। प्रत्येक भाषिक समाज का साहित्य उसकी जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है। वास्तव में नये-नये परन्तु उनके लिए उपयोगी तत्त्वों के प्रति अभिरुचि जगाकर अवाम को बहुत कुछ बतलाने का कार्य नाथपंथ ने किया जिससे लोकभाषा का ढंग से विकास होता रहा।

नाथपंथी सिद्धों का लोकप्रभाव

डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी*

गोरखनाथ अपने युग के सबसे महान धर्म नेता थे। उनकी संगठन-शक्ति अद्‌भुत थी। उनका व्यक्तित्व समर्थ धर्मगुरु का व्यक्तित्व था। उनका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल था। उनके चरित्र में कहीं भी शैथिल्य नहीं था। जिन दिनों उनका जन्म हुआ, भारतीय धर्म साधना की अवस्था बहुत ही गिरी हुई थी। शुद्ध जीवन, सात्विक वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना अपने निम्नतम स्तर तक पहुँच गयी थी। गोरखनाथ ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण कर दिया। लोकजीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धों से उसके पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी, उसे गोरखनाथ ने नयी प्राणशक्ति से अनुप्राणित किया। वे स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे लेकिन वे जानते थे कि जनता से संवाद करते समय पाण्डित्य की भाषा संस्कृत से नहीं जनता में प्रचलित उनकी भाषा से ही जनता के बीच में अपनी बात रखी जा सकती है। इस प्रकार इस मार्ग में कठोर ब्रह्मचर्य, वाक्‌संयम, शारीरिक और मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, आन्तरिक शुद्धि और मद्यमांसादि से पूर्ण बहिष्कार पर जोर दिया गया है। लोकभाषाओं में पाये जाने वाले पदों में यह स्वर बहुत स्पष्ट और बलशाली है। गोरखनाथ के स्वर ने ही परवर्ती सन्तों के लिए आचरण शुद्धिप्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। सन्त साधकों को नाथपंथियों के द्वारा बहुत कुछ बनी बनायी भूमि प्राप्त हुई। उत्तर भारत के साहित्य में भी इस पंथ के कारण दृढ़ता और आचरणशुद्धि भुलायी नहीं जा सकती।

भारतीय चिन्तन की अजस्र धारा में नाथपंथ एक सन्धिस्थल है। नाथपंथी सिद्धों का लोकप्रभाव अति व्यापक था। नाथ-सिद्धों ने तत्कालीन जनता को कर्मकाण्ड कीशृंखला से विमुक्त कर एक नव्य दृष्टिकोण प्रदान कर मानव जीवन में सदाचार को प्रतिष्ठित किया। नाथयोगी हठयोग की क्रियाओं को अधिक महत्त्व देते थे। नाथ योगियों ने अपने उद्देश्यों में पूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन को ही आदर्श माना है। नाथों ने संयम पर सर्वाधिक बल दिया। नाथ योगियों ने नारी को गृहिणी, दासी आदि रूप में न स्वीकार कर योगिनी रूप में माया का ही प्रतिबिम्ब माना है। माया-रूप में स्वीकृति

---

*मालती कुंज, सिद्धार्थ इन्क्लेव विस्तार, एच.आई.जी. द्वितीय, 32, तारामण्डल, गोरखपुर; मो. 9415632538

के कारण ही नाथपंथी साहित्य में नारी-निन्दा प्रत्यंकित है। एक ओर नाथों ने नारी निन्दा की है तो दूसरी ओर माता के रूप में उसे पूज्य समझा है। मातृशक्ति नारी को भोग्या रूप मे ंनाथयोगी स्वीकृति नहीं देते हैं-

रूपे-रूपे कुरूपे गुरुदेव, बाघनी भोले-भोले
जिन जननी संसार दिषाया ताको ले सूते षोले। (गोरखबानी, पृ. 144)

नाथपंथ में शास्त्र पर कम, लोक पर अधिक बल दिया गया था। उनका स्पष्ट कथन था कि शास्त्रार्थ से लोक का भला क्या लेना-देना। सामान्य लोक-जीवन में शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन तो परम्परागत लोक-व्यवहार से ही होता है। लोक तो सरल और सीधे मार्ग का अनुगामी होता है। शास्त्रीय सिद्धान्तों की जटिलता में वह उलझना नहीं चाहता। लोककल्याण का भी नाथपंथ के आचार्यों ने इस बात का भरपूर ख्याल रखा और अपने मत का प्रचार लोक में करने के लिए लोकभाषाओं का ही सहारा लिया। अतीत में महात्मा बुद्ध और तीर्थंकर महावीर भी ऐसा ही कर चुके थे। समकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रणेता सन्तकवियों ने भी यही भाषा सिद्धान्त अपनाया। नाथपंथ के आचार्यों की मान्यता थी- *'संस्कीरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।'* अर्थात् संस्कृत गहराई में स्थित कुएँ का बँधा हुआ पानी है और लोकभाषा तो निरन्तर प्रवहमान पानी है। बहता पानी साफ-सुथरा, तरोताजा और सर्वजनसुलभ होता है, जबकि कुएँ का पानी बँधा हुआ और श्रमसाध्य होता है। उपयोग की निरन्तरता के अभाव में वह सड़ने भी लगता है। आचार्य कवि राजशेखर ने भी अपनी 'कर्पूरमंजरी' में संस्कृत और लोकभाषा की विशेषता कुछ इसी अन्दाज में बतायी है- *'परुषा सक्किअ बँधा पाउद बंधोवि होइ सुउमारो'* अर्थात् संस्कृत रचनाएँ कठिन होती हैं और प्राकृत लोकभाषा की रचनाएँ कोमल होती हैं। निःसन्देह नाथपंथ के साहित्य में लोकभाषा को ही प्रश्रय मिला, क्योंकि लोक को, उनकी ही भाषा में समझाना सरल और प्रभावकारी होता है। इसीलिए नाथपंथी विचारधारा के उत्तर भारत के तत्कालीन समस्त देसी भाषाओं के सन्तों और भक्तों ने अपने-अपने ढंग से जनता को उपदेशित करना प्रारम्भ किया था।

नाथपंथ के सिद्धान्तों का अवगाहन करने के साथ जब हिन्दी भक्ति आन्दोलन की तरफ दृष्टिपात किया जाता है तो स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि योगसाधना दोनों विचारधाराओं में समान रूप से विद्यमान है। यदि सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करें तो पायेंगे कि निर्गुण भक्ति की साधना में नाथपंथ का विशेष प्रभाव है। इसमें भी कबीर और दादू विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कबीर की मस्ती और फक्कड़ाना में हमें नाथपंथ के योगी साधक की जीवनचर्या झलकती है। गोरखबानी और कबीरबानी के स्वर एक जैसे लगते हैं। गोरख के समान ही कबीर की बानियों में 'अवधू' सम्बोधन प्राप्त होता है। मनसा-वाचा-कर्मणा कबीर जैसे गोरख की परछाईं थे। क्योंकि गोरखनाथ भी लोकोन्मुखी सन्त और कबीरदास भी। कबीर ने भी नाथपंथानुमोदित जाति-पाँति के भेद-भाव से ऊपर

उठकर सामाजिक समरसता का पक्ष लिया। केवल कबीरदास ही नहीं अपितु मध्यकाल का कोई भी सन्तकवि नहीं जो मन की एकाग्रता विषयक प्रसंग में गुरु गोरखनाथ का स्मरण न करता हो। वह सगुणमार्गी हो या निर्गुणमार्गी, सूफी की प्रेमरस साधना हो या निर्गुनियों का ज्ञानमार्ग हो, सर्वत्र गोरखनाथ अपने योगदर्शन के रूप में उपस्थित हैं। एक समय तो ऐसा आया जब समस्त भारतीय धर्मसाधना में योग केन्द्रीय तत्त्व के रूप में स्वीकार कर लिया गया। गोस्वामी तुलसीदास को भी कहना पड़ा- 'गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग'। सूफी कवि जायसी ने भी कहा- 'जोगी सिद्ध होय तब, जब गोरख सो भेंट'। कालान्तर में हिन्दी साहित्येतिहास के समीक्षकों ने यहाँ तक कह डाला कि भक्ति की उत्पत्ति योग की भूमि में ही सम्भव हुई है। आचार्य द्विवेदी का यह कथन बड़ी ही प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया- 'योग के थाले में प्रेम का बीज पड़ने से भक्तिरूपी लता लहलहा उठी।' तात्पर्य यह कि समस्त मध्यकालीन भक्ति साहित्य चाहे वह किसी भी लोकभाषा में लिखा गया हो गोरखनाथ के व्यक्तित्व की तेजस्विता से भासमान है। योगबल की वैज्ञानिकता को आत्मसात करता है, सामाजिक समरसता के भाव को स्वीकार करता है तथा एक विशाल जनसमाज को अपनी अन्तःशक्ति से दूर-दूर तक प्रभावित किया। राघवानन्द, रामानन्द, कबीर, रैदास, दादूदयाल, दरिया साहब आदि भक्तिमार्गी सन्त कवियों ने तथा कुतबन, मंझन, उसमान, नूरमुहम्मद तथा मलिक मुहम्मद जायसी आदि सूफी कवियों ने गोरखनाथ और उनके योग की भूरि-भूरि सराहना की है।

देसी भाषा में लिखी गोरखपंथ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में हैं जो विक्रमी संवत् 1400 के आस-पास की हैं। इन पुस्तकों में साम्प्रदायिक शिक्षा की बात है। जो पुस्तकें पायी गयी हैं उनके नाम इस प्रकार हैं- गोरख-गणेश गोष्ठी, महादेव-गोरख संवाद, गोरखनाथ जी की सत्रह कला, गोरखबोध, दत्तगोरख संवाद, योगेश्वरी साखी, विरापा पुराण, गोरखसार और गोरखबानी। ये सब ग्रन्थ गोरखनाथ के रचे नहीं उनके अनुयायी शिष्यों द्वारा रचे गये हैं। गोरख के समय में जो भाषा लिखने-पढ़ने और बोलने में व्यक्त होती थी उसमें प्राकृत या अपभ्रंश शब्दों का थोड़ा या ज्यादा मेल अवश्य रहता था। जहाँ तक नाथपंथ के उन्नयन के पूर्व सिद्ध साधकों की जो भाषा अपनी बानियों में होती थी, वह भाषा देसी भाषा मिश्रित अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी की काव्यभाषा है, जो उस समय गुजरात, राजपूताना और ब्रजमण्डल से लेकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की शिष्ट भाषा थी। मगध में रहने के कारण इनकी भाषा में कुछ पूरबी प्रयोग (जैसे- भइले, बूड़िले) मिले हुए हैं। यही परम्परा अपने ढंग पर नाथपंथियों ने भी जारी रखी। आगे चलकर भक्तिकाल में निर्गुण और सन्त-सम्प्रदाय किस प्रकार वेदान्तक ज्ञानवाद, सूफियों के प्रेमवाद तथा वैष्णवों के अहिंसावाद को मिलाकर सिद्धों और नाथपंथियों द्वारा बनाये हुए इस रास्ते पर चल पड़ा। कबीर आदि सन्तों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले उसी प्रकार 'साखी' और 'बानी' की बहुत कुछ सामग्री और सधुक्कड़ी भाषा भी मिली।

गोरखनाथ के नाम पर जो पद मिले हैं, वे कितने पुराने हैं, यह कह पाना कठिन है। इन पदों में कई दादूदयाल के हैं, कई कबीर के नाम पर हैं और कई नानकदेव के नाम पर पाये जाते हैं। इन लोगों की भाषा देसी है जिनमें कई लोकोक्ति का रूप ले लिये हैं, कई जोगीड़ा का रूप ले लिये हैं। इन पदों में अपने अंचल की लोकभाषा में योगियों की साधनामूलक बातें कही गयी हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में गोरखबानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसकी भाषा भोजपुरी प्रतीत होती है। सम्भवतः इसीलिए भोजपुरी के विद्वान लोग भोजपुरी लोकभाषा का आदि कवि गुरु गोरखनाथ को मानते हैं। पद इस प्रकार है-

हँसिबा, षेलिबा, रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।
हँसिबा षेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राषि आपना चीत।।
हँसिबा षेलिबा धरिबा ध्यान। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियान।
हँसै खेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।। (गोरखबानी, पृ.3-4)

ध्यान देने की बात है कि नाथपंथ का सर्वाधिक प्रभाव राजपूताना और पंजाब की ओर रहा। अतः जब अपने मत के प्रचार के लिए इस भाषा के भी ग्रन्थ लिखे गये तब उस तरफ की ही प्रचलित लोकभाषा का ही व्यवहार किया गया। नाथपंथी लोगों को मुसलमानों को भी अपनी बात सुनानी पड़ती थी जिनकी बोली अधिकतर दिल्ली के आसपास की खड़ी बोली थी। इससे उसका मेल भी उनकी बानियों में रहता था। इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परम्परागत भाषा से अलग एक सधुक्कड़ी भाषा का सहारा लिया जिसका ढाँचा खड़ी बोली लिये राजस्थानी व देसी भाषा में रची गयी इन पुस्तकों में पूजा-तीर्थाटन आदि के साथ हज, नमाज आदि का भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार की एक पुस्तक का नाम है- 'काफिर बोध'। यह पुस्तक डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के पास रही है।

नाथपंथ का सीधा प्रभाव सूफी मतावलम्बियों और सन्त सम्प्रदाय के लोगों पर पड़ा है। इन दोनों मतावलम्बियों ने अपने मत का प्रचार उस समय की प्रचलित लोकभाषा में ही किया है क्योंकि इन लोगों की कोई अलग से मौलिक भाषा नहीं है। जनता में रहना और उन्हें उपदेश देना इनकी प्रवृत्ति थी इसलिए स्थानीय भाषा का पुट और जनवाणी का प्रयोग इनका धर्म बन गया था। लोकभाषा को समृद्ध करने का कार्य इन्हीं सन्तों और सूफी कवियों के द्वारा ही किया गया। डॉ. विनीता कुमारी का अभिमत है- "सभी सन्त लोकभाषा को सार्वजनिक बनाने के प्रबल पक्षधर थे। लोकभाषा का इनकी दृष्टि में विशेष महत्त्व है। इन लोगों ने अनुभूति सत्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए जनसाधारण की भाषा अर्थात् लोकभाषा या देसी भाषा को अपने मत के प्रचार का माध्यम बनाया। इन लोगों की बानियाँ समाज के आभिजात्य वर्ग के लिए न होकर जनसाधारण के लिए था। अतः जनसाधारण को प्रभावित करने के लिए उन्हीं की भाषा का प्रयोग करना उचित भी था। मध्य युग

में संस्कृत और फारसी जैसी सुशिक्षित वर्ग की भाषाओं की अपेक्षा प्रचलित लोकभाषाओं को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की भावना वेगवती हो उठी थी। उसके लिए शास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य नहीं था। न किसी रूढ़िगत रचना-शैली के नियम का पालन ही आवश्यक था। मध्यकाल में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, गुजराती आदि भाषाओं में रचना की प्रवृत्ति को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हो चली थी कि न केवल अशिक्षित अपितु शिक्षित एवं विशिष्ट वर्ग के साहित्यकार भी जनभाषा के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति प्रदान करने में तत्पर हो रहे थे।"

इन निर्गुनिया सन्तों की भाषा लोकभाषा क्यों कही जाती है अथवा लोक से जुड़ी भाषा ही सन्तों और सूफियों ने क्यों अपनायी, इसके पीछे क्या कारण हैं? इस कारण को स्पष्ट करते हुए सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है- "सन्तों की भाषा पर विचार करते समय अनेक बातों पर विचार करने की आवश्यकता पड़ जाती है। एक तो वे सुदूर तथा विभिन्न क्षेत्रों के निवासी थे जहाँ पर विविध बोलियों के कारण उनकी भाषा के स्वरूप में अन्तर का पड़ जाना स्वाभाविक था। दूसरे उनमें अधिकतर अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित रहने के कारण उनकी भाषा का सुव्यवस्थित रूप में प्रयुक्त होना भी सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त सन्त लोग अपनी भाषा से अधिक उसमें कही गयी बातों पर जोर देते थे। फिर सन्त लोग भ्रमणशील होने के कारण जहाँ कहीं भी जाते थे, वहाँ की जनता के प्रति कुछ उपदेश देते समय, अथवा उस क्षेत्र के अन्य सन्तों के साथ सत्संग करने के अवसरों पर उन्हें स्थानीय भाषा का भी कुछ-न-कुछ व्यवहार करना पड़ जाता था।"[1]

सन्तों की भाषा पर विचार करते समय भाषा-विज्ञान के पण्डित निराश हो सकते हैं, किन्तु लोक कवि और लोक चेतना से जुड़ने वाले पाठकों के लिए इन सन्तकवियों की भाषा न तो अनगढ़ है और न प्रयास कर बुना गया शब्दजाल। इन कवियों के प्रवाह में समस्त भारत देश प्रवाहित था। भाषा की विविधता होते हुए भी सभी कवि लोक से जुड़े थे। विभिन्न क्षेत्रों के सन्तकवि एक साथ खड़े हुए थे इसलिए इनकी भाषा पर क्षेत्रीयता का प्रभाव स्वाभाविक है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है- "सन्त-काव्य के रचयिताओं की भाषा पर विचार करना हमें पहले कतिपय भाषा क्षेत्रों के ही आधार पर अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। ऐसी प्रवृत्ति होती है कि कबीरदास, रैदास, बूलासाहब, गुलालसाहब, भीखा, धरनी, शिवनारायण, कमाल, दरिया, कीनाराम आदि भोजपुरी क्षेत्र में रहकर मलूकदास, जगजीवन, दूलन, भीषम, पलटू आदि को अवधी क्षेत्र का मानकर गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, बूलणशाह, फरीद, गरीबदास आदि को पंजाबी क्षेत्र निवासी समझकर तथा दादू, रज्जब, दीन दरवेश को राजस्थानी क्षेत्र में उत्पन्न जानकर तथा इसी प्रकार तुलसी साहब, शिवदयाल, यारी, बाकी आदि को ब्रजभाषा और खड़ी बोली के क्षेत्र से सम्बद्ध मानकर चले लोकभाषाओं का महत्त्व स्वयमेव सिद्ध कर जाता है।"[2]

डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित के अनुसार "सन्तकवि यद्यपि बड़े विकसित नहीं थे परन्तु जनता के मनोविज्ञान के कुशल पारखी थे। जनता की आवश्यकता को पहचानकर जनता की भावनाओं के ही अनुकूल जनसाधारण की भाषा को उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इसलिए भारतीय जनता के भीतर जितनी इनकी पैठ है उतनी अन्य कवियों की नहीं।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाथपंथ से प्रभावित सन्त और सूफी कवियों ने अपनी बानियों के माध्यम से उच्च आध्यात्मिक विचार तथा गृहस्थ की सात्विक जीवनशैली तथा योगमार्ग का प्रचार करने में अपनी अहम भूमिका बनायी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थः

1. हिन्दी सन्त-साहित्य के स्रोत, पृ. 394-395
2. सन्तकाव्यधारा- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 68
3. हिन्दी सन्त-साहित्य - डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ. 212

भोजपुरी आ नाथपंथ

डॉ. रवीन्द्र कुमार 'शाहाबादी'*

विश्व वाङ्मय में भोजपुरी के वितान बहुत लमहर आ सशक्त होके उभर रहल बा। एने भारतीय जनभषन में भोजपुरी के बढ़त भाषायी शक्ति के कारण तत्कालिक भाषा सर्वेक्षणकर्ता गणेश एन देवी जी के कहे पड़ल कि – "भोजपुरी सबसे तेज विकसित भाषा बनती जा रही है।" एन.डी. टी.वी. के 'प्राइम टाइम शो' में रवीश कुमार जी इहाँ से लमहर साक्षात्कार लेले रहीं। गणेश देवी जी के पुस्तक 90 खंड में आइल बा।

'इंटरनेशनल सोसायटी फॉर फोक नैरेटिव' के वरिष्ठ भारतीय पदाधिकारी श्री महेन्द्र कुमार मिश्र जी टेलिफोन पर बतइनी की गणेश एन. देवी के पुस्तक एही संगठन के आर्थिक सहयोग से छपल बा। ई संगठन विश्व में लोकभाषा पर सर्वे आ ओकर औचित्य पर लोगन से कार्य करावले। एकर अगिला सम्मेलन अपना देश के असम राज्य में 2019 में हो रहल बा।

युनाइटेड नेशन के सेमिनार 'यूनिवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट' के पुस्तक में 153 भाषा के लेख छपल रही सन, जवना में भारत के चार भाषा हिन्दी, उर्दू, भोजपुरी आ अंग्रेजी रहे। रॉबर्ट टेमले अपना किताब 'फेनेलॉजी ऑफ भोजपुरी' के भूमिका में लिखले रहीं कि आवे वाला दिन में भोजपुरी भारत के छठवा अच्छी भाषा होई। इहाँ के 'फोनेटिक्स ऑफ द्रविण' भी लिखले रहीं।

आधुनिक काल में हिन्दी भाषा के शिखर पर पहुँचावे में भोजपुरी भाषी साहित्यकारन के महत्त्वपूर्ण योगदान बा। नाथ सिद्ध आ कबीर से लेकर भारतेन्दु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित राहुल सांस्कृत्यायन आ डॉ. विद्या निवास मिश्र आदि प्रभृति रचनाकार भोजपुरी क्षेत्र के लोगन के ही देन कहल जा सकेला। सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता सेनानी मंगल पाण्डेय जी होईं या आजादी के बाद जयप्रकाश जी के जनक्रान्ति होखे सबकर अगुआयी भोजपुरी क्षेत्र के लोगन द्वारा ओकरा भाषायी ताकत से भइल बा।

विश्व के बदलत परिवेश में आज भाषा उठा-पठक के दौर से जी मर रहल बाड़ी सन।

*तदर्थ प्राध्यापक, भोजपुरी विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, भोजपुर; आवास- क्लब+ब्लॉक रोड, आरा, भोजपुर, बिहार-802301; मो. 9430273407

बाकिर भोजपुरी के ताकत बढ़ल जा रहल बा। 'भोजपुरी की वाचिक कविता' में डॉ. विद्या निवास मिश्र जी के कहे के तात्पर्य ई बा कि भोजपुरी के स्मृति ओकरा भाषा के समृद्ध करेले। निश्चित रूप से हम कह सकिले कि हमरा भोजपुरी संस्कृति के स्मृति में नाथपंथ के साहित्य के बहुत बड़ा योगदान बा।

डॉ. गदाधर सिंह जी भोजपुरी के इतिहास में कह रहल बानी कि "चौरंगीनाथ में भोजपुरी के प्रारम्भिक रूप मिलता। चौरंगीनाथ के भोजपुरी के आदि कवि यदि मानल जाय, त कवनों अतिशयोक्ति ना होई।" बाकिर भोजपुरी क्षेत्र के कुछ लोग कबीर के आदि कवि के रूप में मानतारन। जबकि कबीर के प्रादुर्भाव 1488-1517 तक के बा। नाथ साहित्य बहुत पहिले बा। नाथपंथ के साहित्य भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के इतिहास के ऊ पुण्य-पर्व ह, जेकरा में ऊ सब बातन के सुन्दर समावेश बा जवन भारत के आध्यात्मिक जीवन में सबसे बेसी मूल्यवान समझल जाला। ई साहित्य पूर्ण रूप से धार्मिक बा।

आधुनिक आर्यभाषा समूह के साहित्य में नाथपंथ आ गुरु गोरखनाथ के साहित्य के आपन अलग पहचान बा। बौद्ध-सिद्ध साहित्य के प्रवाह बेसी से बेसी बारहवीं शती तक रहे। कबीरदास जी के पन्द्रहवीं शती मानल जाला। एह दूनों के बीच के साहित्य के धारा नाथपंथी साहित्य मानल गइल बा। एह पंथ के प्रभाव आगे के सब सन्त साहित्य पर पूर्ण रूप से दिखाई पड़ता।

मत्स्येन्द्रनाथ के नाथपंथ के प्रथम आचार्य के रूप में मान्यता बतावल गइल बा। इहाँ के शिष्य गोरखनाथ जी नाथपंथ के सबसे ऊँचाई पर ले गइनी। फिर गोरखनाथ जी के अनेक शिष्य एह पंथ के आगे बढ़वलन। गुरु गोरखनाथ जी के सम्बन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी 'नाथ सम्प्रदाय' में लिख रहल बानी कि "विक्रम संवत् दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान गुरु गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारत के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योगमार्ग ही था। भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें गोरखनाथ-सम्बन्धी कहानियाँ नहीं पायी जाती हों। इन कहानियों में परस्पर ऐतिहासिक विरोध बहुत अधिक है, परन्तु फिर भी इनसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे। इस महान धर्मगुरु के विषय में ऐतिहासिक कही जाने लायक बातें बहुत कम रह गयी हैं। ये मार्ग के महत्त्व-प्रचार के अतिरिक्त कोई विशेष प्रकाश नहीं देतीं।" प्रमुख प्रथम भाषा सर्वेक्षणकर्ता ग्रियर्सन जी कह रहल बानी कि "गोरखनाथ सम्भवत: पश्चिमी हिमालय के रहने वाले थे। इन्होंने नेपाल को आर्य अवलोकितेश्वर के प्रभाव से निकालकर शैव बनाया था। मेरा अनुमान है कि गोरखनाथ निश्चित रूप से ब्राह्मण जाति से उत्पन्न हुए थे और ब्राह्मण वातावरण में ही बड़े हुए थे। उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी शायद ही कभी बौध साधक रहे हों ये सतीर्थ है, परन्तु 'धरमनाथ'

बहुत परवर्ती है।" नाथ सम्प्रदाय में आदिनाथ आ दत्तात्रेय के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण नाम आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ जी के बा। इहाँ के मीननाथ आ मछन्दरनाथ से लोकप्रिय भइनी। 'कौल-ज्ञान निर्णय' के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ ही कौल मार्ग के प्रवर्तक रहीं। मत्स्येन्द्रनाथ जी के गुरु दत्तात्रेय जी रहीं।

नेपाल के लोग गुरु गोरखनाथ के श्री पशुपति नाथ जी के अवतार मानेलन। नेपाल के भोगमती, भातगाँव, मृगस्थली, औंघरा, स्वारीकोट, पिडपन आदि कई स्थानन में इहाँ के आश्रम बा। एक समय नेपाल के मुद्रा पर एक ओर श्री श्री गोरखनाथ लिखल रहे। गोरखनाथ के शिष्य होखे के कारण नेपाली गोरखा कहल जालन। आजो नेपाल में एगो जिला बा जवना के नाम इहें के नाम पर पड़ल बा जवना के नाम गोरखा बा। एह जिला में एगो गुफा बा जहँवा गुरु गोरखनाथ के पग के चिन्ह आ उहाँ के मूर्ती भी बा। इहाँ हर साल वैशाख पूर्णिमा के अवसर पर एगो भव्य उत्सव मनावल जाला जवन रोट महोत्सव के मान्यता के रूप में विख्यात बा। इहाँ मेला भी लागेला। आजो नेपाल में गुरु गोरखनाथ के आदर आ सम्मान के साथ नाम लिहल जाला। अत: इहे सत्य बा कि आजुओ नेपाल में गोरखनाथ के शिव के रूप में मानल जाला। आ इहो विश्वास कइल जाला कि इहें के संरक्षण में नेपाल पर गोरखा जाति के आधिपत्य भइल। कहल जाला कि गुरु गोरखनाथ जी के कृपा के कारण नेपाल अस्तित्व में आइल। नेपाल के राजा कई शताब्दियन से गुरु गोरखनाथ जी के चरण पादुका अपना मुकुट पर लगा के राज करत रहन। नेपाल आ भारत के सम्बन्ध बहुत पुरान बा। आजो गोरखपुर में खिचड़ी मेला के अवसर पर नेपाल के शाह घराना से खिचड़ी आवेला। गुरु गोरखनाथ जी के प्रेरणा से पृथ्वीनारायण शाह जी नेपाल राष्ट्र के स्थापना कइनी। शाहजी नेपाल के सब रियासतन के एकीकरण कर के राष्ट्र के स्थापना कइनी तब से लेके आजतक खिचड़ी मेला में शाह के ही खिचड़ी गोरखपुर आवेला आ उहे पहिला बेर प्रसाद के रूप में चढ़ावल जाला। फिर उहे प्रसाद स्वरूप रोटा के प्रसाद नेपाल के राजवंश के भेजल जाला। खिचड़ी के समय आजो नेपाल से बहुत ज्यादा मात्रा में उहाँ के श्रद्धालु गोरखपुर आवेलन।

आज नेपाल में भोजपुरी के स्थिति बहुत अच्छा बा। भोजपुरी भाषियन के सरकार में दबदबा बा। अबहीं के वर्तमान 107 सांसदन में 25 सांसद भोजपुरी भाषी बाड़न। उहाँ के भोजपुरीया सांसद अबकी बार भोजपुरी में सपथ लेलन हा। भोजपुरी साहित्य के विकास में नाटक, निबंध, कहानी, रेखाचित्र आ कविता यानी साहित्य के सब विधा के भरपूर विकास भइल बा। परोक्ष रूप से हमरा कहे के मतलब ई बा कि कहीं ना कहीं नेपाल के भाषायी विकास में गोरखनाथ जी के भरपूर योगदान बा।

नाथपंथी लोग के 'कनफटावॉ' योगी कहल जाला। हमारा परिवेश पूर्णत: अबहियों ग्रामीण बा। कारण ई बा कि हम अभी भी कृषि कार्य के देखभाल करिले। आज के तीस-चालीस बरिस पहिले गाँव में योगी लोग लावत रहे। लगभग रोज एक फेरा पूरा गाँव के लगावत रहे। ओही में केहु

से कहला पर योगी लोग कुछ ज्यादा देर तक सरंगी बजावत रहे आ ओही पर भरथरी के गीत गावत हरे लोग। हम ऊ गीत सुनले बानी। हमरा गाँव के एगो साथी भी योगी लोगन के साथ चल गइल रहन, कुछ दिन के बाद जब योगी लोग के साथ अइलन त गाँव में हाहाकार मच गइल। सभे देखे गइल बाकिर ऊ अपना के स्वीकार ना कइलन। उनकर माई भिक्षा ना देली। ऊ घुरियियिले लगभग पन्द्रह दिन तक टिक गइलन। बाद में उनका महतारी के भिक्षा देवे के पड़ल। आज भी एह सम्प्रदाय के योगी लोग अपना के गोरखपुर मठ से सम्बन्ध बतावे लें आ सारंगी पर भरथरी क गीत गावत बारह मन गुदड़ी बारह मन धातु के माँग करे लें। बारह मन के पीछे सम्भवत: गोरखनाथ सम्प्रदाय के पृष्ठभूमि होई। बीस-पच्चीस बरिस पहिले नाच मंडली के लोग भी भरथरी जी के काव्य के चंपु काव्य बना के देखावत रहे। आज रंगमंच पर भी देखे के नइखे मिलत।

नाथपंथ के साहित्य रचना में संस्कृत, प्राकृत आ हिन्दी अवरू भारतीय लोकभाषा के शब्दन के भरमार बा। कारण ई बा कि ई लोग अपना पंथ के प्रचार-प्रसार खातिर सगरे घूमत रहे। चूँकी नाथपंथ के प्रभाव पश्चिमी भारत जइसे राजस्थान आदि पर बेसी रहे एह से स्वाभाविकता कि इनकर भाषा पर राजस्थानी के प्रभाव बाहुल्य होखे। मत्स्येन्द्र जी के कविता देखल जाव-

जल कुञ्चा है माँछली, खण कुञ्चा है मोर।
सेवक चाहै राम कूँ ज्यो, च्यंतवत चंद चकोर।।
जोगी सोई जोगी रे, जुगत रहै उदास,
तात नीरं जण पाइया, यो कहै मच्छन्द्रनाथ।। (गोरखवाणी)

ई रचना डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा सम्पादित 'गोरखवाणी' से लेल गइल बा। नाथपंथी साहित्य में गुरु गोरखनाथ जी के बाद उनकर चेला एह पंथ के आगे बढ़ावे में जोरदार वकालत कइलन। गुरु गोरखनाथ के सम्बन्ध में अतना जनश्रुति बा कि ओकरा में से इतिहास के तथ्य निकालल बड़ा कठिन काम बा। एह से हम उनका जन्म-मरण के फेर में ना पड़ के उनकरा साहित्य पर कुछ विचार कर रहल बानी। गोरखनाथ जी के रचनन में भोजपुरी के तत्त्व खुल के सामने आइल। अइसे त नाथपंथी साहित्य पश्चिमी भारत आ पूर्वी भारत आ नेपाल में ज्यादा असरदार आजो दिखाई देता। आज उत्तर प्रदेश के ज्यादातर जिलन में भोजपुरी बोलल जाला। खासकर गोरखपुर, बलिया, देवरिया आ पुराना शाहाबाद के सभ जिला के भोजपुरी प्राय: एके बा। जबकि बिहार से सटल नेपाल देश के भी भोजपुरी गोरखपुर के भोजपुरी जइसन बा। भाषा बहत नीर ह। अब हम इहाँ गोरखनाथजी के कुछ काव्य अंश रख रहल बानीं-

पूरब देश पछहीं घाटी (जनमा) लिख्या हमरा जोगं।
गुरु हमारा नांगवर कहिए ये है भरम विरोगं। (गोरखवाणी, पृ. 212)

एह छन्द के प्रथम चरण से अर्थ निकलता कि गोरखनाथ जी के जन्म पछाँह के घाटी में भइल रहे आ जीवन के कार्य क्षेत्र पूरब देख बनल। गोरखनाथ जी केवल योगी ही ना रहीं, बल्कि एगो बड़ विद्वान् आ कवि भी रहीं। संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ आ बहुत से हिन्दी के भी कविता मिलता। डॉ. बड़थ्वाल जी के अनुसार 40, मिश्रबन्धु जी के अनुसार 10 ग्रन्थ, संस्कृत के लगभग 26 ग्रंथन के उल्लेख मिलता।

गोरखवाणी के ई कविता में लगभग अस्सी प्रतिशत शब्द भोजपुरी के लगता पढ़ल जाव-

हँसिबा षेलिबा रहिबा रंग, काम क्रोध न करिबा संग।
हँसिबा षेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राखिबा आपना चीत।।
हबकि न बोलिबा, ढबकि न चालिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा, सहजं रहिबा, भणत गोरष रावं।। (गोरखवाणी, पृ. 84)

एह रचना में भोजपुरी के छाँव ज्यादा देखे के मिलता। मैरिला, पाइला, कथीला, गइला, हबकि, ढकबि, धरिबा, रहिबा, करिबा, चलिबा इत्यादि अनेक शब्द निश्चित रूप से भोजपुरी के ह।

फिर दोसर छंद-

बड़े-बड़े कूले मोटे-मोटे पेट, रै पूता गुरु सौं भेट।
षड़ षड़ काया निरमल नेत, भई रे पूता गुरु सौं भेट।। -109
एकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पमनां बंधि।
षूटै तेल ना बुझै दीया बोलैनाथ निरन्तरि हूवा।। -187

एह दूनों छन्द में भोजपुरी के बहुते शब्द बडुए। आध्यात्मिक जीवन खातिर जवन चारित्रिक गुण आ शुचिता आवश्यक होला ओकर पूर्णता नाथपंथी साहित्य में बा। कबीर के आविर्भाव के पूर्व ब्राह्मण धर्म के जटिल कर्मकाण्ड आ बाह्य विधि-विधान के विरुद्ध जवन आन्दोलन भइल ओकर सार तत्त्व नाथपंथ के साहित्य में बा। एकर लाभ ई भइल कि ओह सारतत्त्व के जनभाषा में अभिव्यक्ति मिलल।

ईश्वर के नाम पर, धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़ा करेवाला के गोरखनाथ जी निन्दा कर तानी। इस्लाम के अनुयायी धर्म-प्रचार खातिर निरीह पारसियन के रक्त से धरती के लाल क देलें। उहाँ के कहतानी कि-

महंमद महंमत न करि काजी महंम का विषम विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती, लौहे घड़ी (गढ़ी) न सारं।।
सबदै मारी सबदै जिलाई, ऐसा महंमद पीरं।

तावै मरमि न भूलौ काजी, सो बल नहीं सरीरं।। (गौरखवाणी)

हे काजी! तू मुहम्मद, मुहम्मद मति कर, काहे कि मुहम्मद के जानत नइख। तू समुझत होइब कि जीव-हत्या करके मुहम्मद के मार्ग पर चल रहल बानी, बाकिर उनकर विचार बहुत गम्भीर आ कठिन बा। मुहम्मद साहब जवन छुरी के प्रयोग करत रहन ऊ शब्द के छुरी रहे। ऊ शिष्य के भौतिक मनोवृत्ति के एही छुरी से मारत रहलें। बाह्य सांसारिक विषय-वासना के नष्ट हो गइले पर आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होला। मुहम्मद अइसन पीर रहलें। भ्रम में मत भुला। तोहरा में उनकर नकल करेके सामर्थ्य नइखे।

एही विचारधारा से प्रभावित होके कबीरदास जी हिन्दू आ मुसलमान दूनों जने के धार्मिक कट्टरता के विरोध कइले बानी-

आँकड़ पाथर चुन के मस्जिद लियो बनाय।
का चढ़ि मुल्ला बाग दे बहरा हुआ खुदाय।।

फिर- पाहन पूजौ तो हरि मिलै, तो क्यों न पूजूँ पहाड़।
उससे तो अच्छी चकिया भली पीस खाये संसार।।

कबीर के आस-पास गुजरात के संत आखा जी भी एह तरह के विचार रखले बानी। हमरा लगला कि पूरे भारत में एह तरह के विचार पहिला बार गोरखनाथ जी के काव्य में आइल बा।

योग-साधना में शरीर-शुद्धि, रसायन, कायाकल्प आदि विधि के योगशास्त्र में बतावल गइल बा उहें के शब्द में-

गुर कीजै गरिला निगुरा न रहिला।
गुर बिनु ग्यांन न पायेला रे भाईला।
दूधैं धोया कोइला उजला न होइला।
कागा कंठे पहुप माल हँसला न भैला।।

कवनों साधना में पूर्णता प्राप्ति खातिर सब सम्प्रदाय में गुरु के महत्त्व प्रतिपादित बा।

चौरंगीनाथ के गुरु गोरखनाथ के गुरुभाई मानल जाला। 'प्राणसंकली' के एगो छन्द के लाइन देखल जाय-

सत्य बदंत चौरंगीनाथ। आदि अंतरि सुनो वृितांत।
सालवाहन घरे हमरा जनम उतपति, सहि मां झूठे बोलीला।।

चरपटीनाथ गोरखनाथ जी के शिष्य रहलीं। प्रारम्भ में इहाँ के वज्रयान-सम्प्रदाय में रहीं, बाद

में इहाँ के नाथपंथ में दीक्षित भइलीं। इहाँ के एगो पद के अंश देखल जाव–

इस लाल पट इक पटा। इक तिलक जनेऊ लमक लटा।
जब लहीं उलटी प्राण घटा। तब चरपट भूले पेट नटा।।

इहाँ के काव्य के भाषा में भोजपुरी के छौंक मिलता।

भरथरी के नाम संस्कृत साहित्य में स्वर्णाक्षर में लिखल गइल बा। इहाँ के शतक–त्रय आ वाक्यपदीय के रचनाकार के रूप में विख्यात बानीं। भर्तृहरि के सम्बन्ध में अनेक अनुश्रुति प्रचलित बा। हर साहित्य के इतिहास लेखक प्रश्न उठवले बाड़न कि भरथरी आ शतक–त्रय भर्तृहरि एके रहीं या अलग–अलग। हम ओह पचरा में नइखी पड़ल चाहत। भरथरी के कथा सारंगी पर बड़ी सुनले बानी आ रंगमंच पर भी इहाँ के पूरा जीवन पर लघु नाट्य देखले बानी। गाजीपुर के डॉ. रामनारायण तिवारी जी एगो गाजीपुर में राष्ट्रीय संगोष्ठी करइले रहीं। दू दिन के संगोष्ठी में पहिलका रात सांस्कृतिक कार्यक्रम में राजा भरथरी वाला नाटक के मंचन भइल रहे। भरथरी के काव्य संसार के असारता आ निवृत्ति–मार्ग के मोक्ष के साधन के व्याख्यान ह। भरथरी के शब्द में–

दुषी राजा दुषी परजा। दुषी ब्राह्मण बांणिया।
सुषी एक राजा भरथरी। जिनि गुर की सबद पर वाणियाँ।

नारी पर एगो छोट कविता देखल जाव–

दरसने चित्त हरनी। परसने बुधि संजोगे बल हरनी।
कहे भरथरी धिग–धिग नारी राकसनी।
नारी चोरी जारी तीथि विवरजित त्यागी।
सति–सति भाषंत जोगी भरथरी। ते नाइ रता बैरागी।।

हम एह लेख में नाथपंथ के अध्यात्म के चरचा नइखी कइले। नाथ साहित्य में सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा के समवेत दर्शन कइल जा सकेला। एह में जहाँ एक ओर बौद्ध साहित्य आ दर्शन के उदात्त परम्परा के आत्मसात कइल गइल बा, ओहिजा पातंजल योग–दर्शन, शैव सम्प्रदाय के प्रत्यभिज्ञा–दर्शन आ निवृत्ति मार्ग के उच्च पवित्र आचार–विचार के समवाय बा। हिन्दू, बौद्ध आ आपन निजी अनुभव के सम्मिलित रूप ले के गोरखनाथ जी अपना नाथ–सम्प्रदाय के स्वरूप खड़ा कइनी।

अइसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' आ 'नाथपंथ' में अनेक नाथपंथीन के नाम के साथ उनकर काव्य के उदाहरण देले बानी। जइसे चुड़करनाथ, दत्तात्रेयी लक्ष्मण, हणवंत, घूधलोमल, पृथीनाथ, बालनाथ आदि अवरू लोगन के चरचा कइले बानी।

ओइसे कवनो लोकभाषा के विकास के रूपरेखा ओकर वाचिक परम्परा में मिलऽला। भोजपुरी के वाचिक परम्परा बहुत समृद्ध बा। हम अपना शोध लेख से बतावे के ई कोशिश कइले बानी कि नाथपंथी साहित्य से ही भोजपुरी के विकास प्रक्रिया शुरू भइल बा। नाथपंथ के साहित्यिक भाषा पर राजस्थानी के प्रभाव अधिक बा एकरा चलते डा–डी के प्रयोग मिलऽता। बाकिर हम जोर दे के कह रहल बानी कि नाथपंथी साहित्य खास करके गुरु गोरखनाथ आ भरथरी में भोजपुरी के संज्ञा, क्रिया, काल आ वाच्य के भी प्रयोग भरपूर मिल रहल बा। अतः निःसंकोच रूप में हमार विचार बा कि आगे भोजपुरी के इतिहास लेखक नाथपंथी साहित्य से भोजपुरी प्रिण्ट काव्य के विकास शुरू करस।

सन्दर्भ विमर्शः

1. सिंह, दुर्गाशंकर प्रसाद, भोजपुरी के कवि और काव्य
2. तिवारी, उदय नारायण, भोजपुरी भाषा और साहित्य
3. उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी और उसका साहित्य
4. सिंह, गदाधर, भोजपुरी भाषा के विकास यात्रा
5. सिंह, गदाधर, भोजपुरी का इतिहास

लोकभाषा एवं जन-शिक्षा के संवर्धन में नाथ सम्प्रदाय की भूमिका

राजकुमार *

वेद भारतीय ऋषियों, मनीषियों द्वारा संकलित विश्व के महानतम एवं प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। भारतीय शिक्षा का मूल दर्शन भारतवर्ष के नाम में ही निहित है। 'रत' शब्द में 'भा' उपसर्ग लगाने से भारतवर्ष शब्द बना है, जिसमें 'भा' का अर्थ प्रकाश तथा 'रत' का अर्थ रत रहना या तल्लीन रहना अर्थात् जो प्रकाश में रत हो वही भारत है।

भारत की धरती प्राचीन काल से ही गौतम बुद्ध, गोरक्षनाथ, कबीर, नानक, तुलसी जैसे सन्तों एवं महापुरुषों की धरती रही है, जिन्होंने अपने ज्ञान, कला-कौशल से इस पुण्य धरा-धाम को अभिसिंचित करके भारत की ज्ञान-परम्परा को गौरवान्वित करके उसे सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। सभ्यता के उषाकाल में ही भारत के सन्तों, ऋषियों, मनीषियों ने ज्ञान के महत्त्व को समझ लिया था। समय-समय पर इन सन्तों एवं महापुरुषों ने अनेक पन्थों एवं परम्पराओं का प्रतिपादन कर मानवता का एक नया सन्देश देने का काम किया जिससे भारत ने धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में इतनी प्रगति की कि वह 'विश्व गुरु' बन गया तथा भौतिक क्षेत्र में इतनी प्रगति की कि वह सोने की चिड़िया कहा जाने लगा। इसकी पुष्टि करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् एफ.डब्ल्यू. थॉमस ने लिखा है कि "संसार का कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में हुआ हो, जितना कि भारत में या जिसने इतना स्थायी एवं शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो जितना कि भारत ने।"

'धर्म' शब्द संस्कृत भाषा के 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है- धारण करना अथवा अस्तित्व में बनाये रखना। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि 'यताभ्युदय निःश्रेयस सिद्ध स धर्मः' अर्थात् जिससे लोक में अभ्यदुय एवं परलोक में परम कल्याण की प्राप्ति हो, वही धर्म है। अर्थात् जिससे लोक-परलोक, स्वास्थ्य, समाज आदि धारण होता है वे सभी धर्म के अन्तर्गत समाहित हैं। इसके अन्तर्गत शिष्टाचार के मापदण्ड, नैतिक नियम, शरीर के प्रति धर्म, नियमों की वृहद् शाखाएँ मिलती हैं।

*शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, मो. 9455618224, 7897761966

एक ही धर्म की अलग-अलग परम्परा या विचारधारा को मानने वाले वर्गों को सम्प्रदाय कहते हैं। आदिकाल से ही लोकभाषा एवं जन-शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पंथों अथवा सम्प्रदायों जैसे श्वेताम्बर, दिगम्बर, महायान, हीनयान, वज्रयान नाथ एव वैष्णव सम्प्रदाय आदि का अपना योगदान रहा है। विभिन्न सम्प्रदायों के योगदानों को दृष्टिगत रखते हुए लोभाषा एवं जनशिक्षा के संवर्धन में नाथ सम्प्रदाय की भूमिका का मूल्यांकन करना महत्त्वपूर्ण है। लोकभाषा एवं जन-शिक्षा के संवर्धन में नाथ सम्प्रदाय का अतुलनीय योगदान है। इस सम्प्रदाय ने लोकभाषा एवं जनशिक्षा में अपना अमूल्य योगदान देकर समाज की दिशा एवं दशा को एक सकारात्मक ऊर्जा के साथ आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 'राजगुह्य' नामक ग्रन्थ में 'नाथ' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है-

> नाकारोऽनादि रूपं थकारः स्थाप्यते सदा।
> भुवनत्रयमेवेकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते।।

अर्थात् 'ना' का अर्थ 'अनादि रूप' तथा 'थ' का अर्थ 'भुवनत्रय में स्थापित होना'। इस प्रकार 'नाथ' शब्द का अर्थ 'वह अनादि रूप जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है' हुआ।

जालन्धरनाथ स्वयं वन्दन करते हुए कहते हैं कि-

> नाथ स्वयं शिव तत्त्व है परम है ज्योतिर्मान।
> जालंधर वन्दन करे, शिव का रूप महान।।

नाथ सम्प्रदाय

'नाथ' शब्द के विवेचन से स्पष्ट है कि नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो 'नाथ' को परमतत्त्व स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते हैं तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर नामान्त में 'नाथ' उपाधि जोड़ते हैं। ब्रिंग्स ने इन्हें कनफटा, दर्शनी और गोरखनाथी भी कहा है। इस सम्प्रदाय को योगी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इसका अर्थ विस्तृत होने के कारण सन्त से लेकर चमत्कारी संन्यासी भी इसी श्रेणी में आ जाते हैं।

नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति

नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों का मानना है कि जब बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा मैथुनपरक प्रज्ञोपाय अथवा कमल-कुलिस साधना में उलझकर गर्हित होने लगा तब इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ-सम्प्रदाय का उद्भव नवीं शताब्दी में होता है जबकि इसका मूल आदिनाथ (भगवान् भोलेनाथ) से चलता चला आ रहा है। वज्रयानियों की चार प्रमुख वस्तुओं मद्य, मुद्रा, मंत्र तथा हठयोग में से नाथपंथी मद्य मुद्रा के सर्वथा विरोधी थे। वे शैव थे जिनमें शिवशक्ति के सामरस्य

द्वारा चित्त की समता प्राप्त होती है।

लोकभाषा के संवर्धन में नाथ सम्प्रदाय का योगदान

हिन्दी साहित्य में 'लोक' शब्द को स्पष्ट करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों एवं गाँवों में फैली हुई समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग परिष्कृत और रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि-सम्पन्न लोगों की समूची विलासिता, सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं। दूसरे शब्दों में, अपरिष्कृत भाषा लोकभाषा कहलाती है। अतः स्पष्ट है कि सर्वसाधारण में बोली जानेवाली भाषा लोकभाषा कहलाती है। नाथपंथी योगियों तथा कबीर आदि सन्त कवियों की वाणियों में भाषा के रूप में कौरवी, ब्रजी इत्यादि का सम्मिश्रण दिखाई देता है।

विभिन्न विद्वानों के मतों को देखकर अधोलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं-

1. गोरखनाथ की भाषा पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी) है।
2. गोरखनाथ की भाषा पश्चिमी हिन्दी (ब्रजी, बांगरू, खड़ी बोली, बुन्देलखण्डी, कन्नौजी) है।
3. गोरखनाथ की भाषा में कई बोलियों का मिश्रण है।
4. गोरखनाथ की भाषा पुरानी खड़ी बोली है।

देश भर में गोरखनाथ के अनुयायी मिलते हैं, चाहे वे अम्बाला, हैदराबाद और रंगपुर के गाने-बजाने वाले लोग हों, कांगड़ा में नग्नावस्था के औघड़, मध्य प्रदेश में शीशा-कंघा, मूंगा बेचने वाले हों या असम के जुलाहे हों अथवा मुम्बई के वेषधारी साधु या उत्तर प्रदेश के योगी या भगत हों, सब नाथ सम्प्रदाय के व्यापक स्वरूप हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकभाषा के संवर्धन में नाथ सम्प्रदाय का अहम् योगदान है।

जनशिक्षा में नाथ सम्प्रदाय का योगदान

नाथ सम्प्रदाय में शिक्षा के द्वारा विश्व के सभी धर्मों, जातियों, वर्गों एवं सम्प्रदायों के लिए हमेशा-हमेशा के लिए खोल दिये गये। यह प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक बड़ा बदलाव था। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ ने अपनी शिक्षा का प्रचार भारत समेत नेपाल, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तिब्बत, चीन, श्रीलंका आदि देशों में भी किया। इस प्रकार गोरक्षनाथ प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में नव प्रयोग कर उसे विश्व-पटल पर लाकर के अपने आपको हमेशा-हमेशा के लिए एक समर्थ गुरु के रूप में प्रतिष्ठित कर विश्व में भारत का परचम लहराने का कार्य किया।

शिक्षा के केन्द्र

नाथ सम्प्रदाय के उद्भव काल में आज की तरह विद्यालय नहीं थे। शिक्षा मठों, मन्दिरों एवं विहारों में दी जाती थी, जिनमें कुछ आगे चलकर विश्व में ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्धि पाये। आज भी नाथ सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र श्रीगोरक्षपीठ गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर के लगभग चार दर्जन शैक्षणिक संस्थान एवं बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय रोहतक धर्म-दर्शन एवं योग के क्षेत्र में ज्ञान रूपी गंगा बहा रहे हैं, जिसमें भारतीय जनमानस एवं विश्व जनसमुदाय डुबकी लगाकर अपने जीवन को सार्थक सिद्ध कर रहा है। इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय ने अपना अमूल्य योगदान देकर भारतीय शिक्षा व्यवस्था को उच्च शिखर तक पहुँचाने में अतुलनीय योगदान दिया है।

प्रवेश की प्रक्रिया

जिस प्रकार बौद्ध शिक्षा में प्रवेश के लिए पवज्जा संस्कार से गुजरना पड़ता था, ठीक उसी प्रकार नाथ सम्प्रदाय की शिक्षा में प्रवेश के लिए बालक को दीक्षा संस्कार से गुजरना पड़ता था। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम बालक के सिर के बाल मुड़वाने पड़ते हैं तथा उसे स्नान इत्यादि कराकर योगी के वस्त्र पहनाये जाते हैं तत्पश्चात् उसे गुरु के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। शिष्य गुरु के चरणों में नतमस्तक होकर प्रणाम करता है। गुरु शिष्य को अपने सम्मुख बैठाकर आदिगुरुओं का स्मरण कर विशेष मंत्रों का उच्चारण करता है। तत्पश्चात् तिलक आदि लगाकर उसे हमेशा-हमेशा के लिए अपना शिष्य बनाकर एक सुन्दर गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन करता है। इसके बाद बालक मठों एवं मन्दिरों में शिक्षा लेना प्रारम्भ कर देता है। जैसा कि गोरख-महिमा में इसका वर्णन मिलता है-

मूड़ मुड़ाकर शिष्य जो बनता गुरु का दास।
उपदेशों को ग्रहण कर, करता ब्रह्म निवास।।

विश्व योग-गुरु भारत एवं नाथ सम्प्रदाय

अपने उद्भव काल से ही नाथ सम्प्रदाय के योगी साधकों की एक सुन्दर योग परम्परा चलती चली आ रही है, जिससे प्रभावित होकर भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 27 सितम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र में अभिभाषण प्रस्ताव पेश होता है। अभिभाषण प्रस्ताव के कुछ अंश इस प्रकार हैं- "योग, भारत की प्राचीन परम्परा है। यह दिमाग व शरीर की एकता का प्रतीक है, मनुष्य एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य है, विचार, संयम और स्फूर्ति प्रदान करने वाला है। हमारी बदली हुई जीवन शैली में यह चेतना बनकर हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद कर सकता है। तो आइये! अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने की दिशा में काम करते हैं।" 11 दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र संघ में 177 देशों के द्वारा 21 जून को 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने का प्रस्ताव पूर्ण बहुमत से पास होता है। 21 जून वर्ष का सबसे बड़ा दिन होता है और योग भी मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करता है। इस

प्रकार नाथ सम्प्रदाय के महायोगियों की योग शिक्षा को विश्व पटल पर प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी। योग की प्रतिष्ठा के माध्यम से भारतीय योग का विश्व अनुयायी बन रहा है। भारत के विश्वगुरु बनने की दिशा यह महत्त्वपूर्ण पहल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. लाल, विहारी, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं उसकी समस्याएँ
2. सिंह, रीता, गुप्तकाल में शैक्षिक प्रक्रियाएँ
3. थॉमस, एफ.डब्ल्यू., हिस्ट्री एण्ड प्रास्पेक्ट ऑफ ब्रिटिश एजूकेशन इन इण्डिया।
4. शर्मा, आर.ए., शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार
5. जुनेजा, वेद प्रकाश, नाथ सम्प्रदाय और साहित्य
6. स्वामी, महेन्द्र, गोरख महिमा
7. ब्रिंग्स, जी. डब्ल्यू., गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज
8. पीयूष, जगदीश, अवधी ग्रन्थावली, भाग-3

लोकभाषा संवर्धन में नाथपंथ का योगदान

ध्रुति श्रीवास्तव*

नाथपंथ की प्राचीनता अविवेच्य है। नाथपंथ की सनातन जीवनधारा आदिकाल से प्रवाहित होती आ रही है। 'नाथ' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। परमयोगाचार्य महायोगी गुरु गोरखनाथ जी धार्मिक-सांस्कृतिक सन्धिकाल की महान् विभूति थे। ऋग्वेद में 'नाथ' शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्ता तथा सृष्टि के निमित्त रूप में किया गया है। महायोगी गोरखनाथ की 'गोरखवाणी' में 'नाथ' शब्द दो अर्थों में लिया गया है। पहला रचयिता के रूप में तथा दूसरा परमतत्त्व के रूप में। नाथमार्ग योगप्रधान मार्ग है। नाथपंथ के अन्तर्गत वे सभी अनुयायी जन आते हैं जो नाथ सम्प्रदाय की मान्यताओं के प्रति अपनी आस्था एवं श्रद्धा समर्पित करते हुए अपना जीवनयापन करते हैं। इनमें सन्त व गृहस्थ सभी समाहित हैं।

सिद्धों के महासुखवाद के विरोध में नाथपंथ का उदय हुआ। नाथों की संख्या नौ है। इनका क्षेत्र भारत का पश्चिमोत्तर भाग है। इन्होंने सिद्धों द्वारा अपनाये गये पंचमकारों का नकार किया, नारी भोग का विरोध किया, साथ ही बाह्याडम्बरों तथा वर्णाश्रम का विरोध करते हुए योगमार्ग तथा कृच्छ साधना का अनुसरण किया। ये ईश्वर को घट-घट वासी मानते हैं। 'गुरु' को ईश्वर का दर्जा देते हैं और सर्वनिरपेक्ष अलक्ष्य सत्ता को ही अपने अन्तस में लक्षित करते हैं।

भगवान् शिव को नाथ सम्प्रदाय का आदि गुरु कहा गया है। नाथों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गोरखनाथ हैं और इन्हें आदिनाथ शिव का अवतार समझा जाने लगा। नाथयोगी 'शिव' और 'विष्णु' तथा 'हर' एवं 'हरि' में कोई भेद नहीं मानते थे। इनकी रचना 'गोरखवाणी' तथा 'नाथयोगियों की बानियाँ' नाम से प्रकाशित है।

नाथ सम्प्रदाय का उल्लेख ग्रन्थों में योग (हठयोग), तंत्र (अवधूतमत), आयुर्वेद (रसायन चिकित्सा), बौद्ध अध्ययन (सहजयान) हिन्दी (आदिकाल के कवियों के रूप में), तिब्बती परम्परा के 84 सिद्धों में है।

---

*भातखण्डे संगीत महाविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़), 3/रामनिकेतन नया सरकण्डा, सीपत रोड, बिलासपुर (छत्तीसगढ़); मो. 7974042178, 8589692374

हठयोग प्रदीपिका के लेकर स्वात्माराम और इस ग्रन्थ के प्रथम टीकाकार ब्रह्मानन्द ने हठयोग प्रदीपिका ज्योत्स्ना के प्रथम उपदेश में 5 से 9वें श्लोक में 33 सिद्ध नाथ योगियों की चर्चा की है। ये नाथसिद्ध कालजयी होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं। इन नाथ योगियों में प्रथम नाथ आदिनाथ को माना गया है। जो स्वयं 'शिव' हैं जिन्होंने हठयोग की विद्या प्रदान की जो राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी समान है।

सुप्रसिद्ध विद्वान और चिकित्सक महामहोपाध्याय गणनाथ सेन ने पारदादि धातु घटित चिकित्सा का विशेष प्रवर्तन किया तथा विभिन्न रसायन ग्रन्थों की रचना की। 'शाबर तंत्र' में कापालिकों के 12 आचार्यों की चर्चा है। बौद्ध साहित्य में 84 सिद्धों का उल्लेख मिलता है। राहुल सांकृत्यायन ने गंगा के पुरातत्त्वांक में बौद्ध तिब्बती परम्परा के 84 सहजयानी सिद्धों की चर्चा की है, जिसमें से अधिकांश सिद्ध नाथ सिद्ध योगी हैं- लुइपाद, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षपा, गोरक्षनाथ, चैरंगीपा, चैरंगीनाथ, शबरपा, शबर आदि सहजयानी सिद्धों के नाम से जाना जाता है। अपभ्रंश, अवहट्ट भाषाओं की रचनाएँ आदिकाल के कवियों की मिलती हैं। इनमें पाखण्डों, आडम्बरों आदि का विरोध तथा चित्त, मन, आत्मा, योग, धैर्य, मोक्ष आदि का समावेश है। ये जनमानस को योग की शिक्षा, जनकल्याण तथा जागरूकता प्रदान करने के लिए था।

भगवान् शिव के उपासक नाथों के द्वारा जो साहित्य रचा गया वही 'नाथ साहित्य' कहलाता है। नाथ साहित्य में ज्ञान निष्ठा को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया गया है; 'गुरु' की महिमा का विशेष महत्त्व है; हठयोग का उपदेश प्राप्त होता है; मन, प्राण, शुक्र, वाक् और कुण्डलिनी इन पाँचों के संयमन के तरीकों का राजयोग, हठयोग, वज्रयान, जपयोग या कुण्डलीयोग कहा जाता है।

लोकजीवन में लोकसाहित्य का अत्यन्त ही महत्त्व है। इसके संरक्षण एवं अनुशीलन के द्वारा साहित्य का विकास किया जा सकता है। साहित्य में धर्म, समाज, सदाचार आदि बातों का उल्लेख मिलता है। लोकसाहित्य जनता के हृदय के उद्गार हैं। लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनृत्य ये सभी लोकसाहित्य के अंग हैं। इसके अलावा लोकभाषा, लोक सुभाषित, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ इत्यादि भी आते हैं।

नाथपंथी योगियों ने मुख्य रूप से तीन बातों पर जोर दिया योग-मार्ग, गुरु-महिमा और पिण्ड ब्रह्माण्डवाद। भक्ति आन्दोलन के समय नाथपंथ के इस योगमार्ग का प्रभाव हिन्दुओं पर ही नहीं अपितु मुसलमानों पर भी व्यापक रूप से पड़ा, बहुत से मुसलमानों ने नाथपंथ में दीक्षा ली और उनकी साधना पद्धति को स्वीकार किया। उन्होंने आते ही पंजाब प्रान्त में नाथों का प्रभाव देखा उनके प्रति जनता के आकर्षण का विश्लेषण किया। उनकी कतिपय क्रियाओं से वे स्वयं भी प्रभावित हुए, अतएव उनकी अनेक बातों को प्रचार की दृष्टि से आकर्षण होने के कारण अथवा अपने मत के अनुकूल होने के कारण सूफियों ने अपने मत में सम्मिलित कर लिया।

गुरु गोरखनाथ जी की सारग्राही दृष्टि ने तत्कालीन सभी साधना, सम्प्रदायों के सार्थक एवं उपयोगी अंगों एवं तत्त्वों को संग्रहीभूत कर एक ऐसे योगपरक भक्ति–मार्ग का प्रवर्तन किया, जिसमें साधना की पवित्रता, चरित्र की परमोच्चता, संयमपूर्ण जीवन की शक्तिमत्ता एवं आडम्बर रहित जीवन की महिमा का उद्घोष था। अन्धविश्वासों, कुरीतियों, पाखण्डों एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष करेन के कारण, समाज में तिरस्कृत एवं निम्न जाति के लोगों को भी नाथपंथ एवं समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के कारण, भक्ति एवं आस्था का मार्ग जनसाधारण के लिए प्रशस्त करने के कारण, लोकभाषा, लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति से जुड़े होने के कारण लोक–चेतना का जो ज्वार गोरखनाथ जी द्वारा उद्दीप्त हुआ उसमें कंचन–कामिनी के प्रति अनुरक्त साधक एवं पोंगापंथी भक्त बह गये।

परमाचार्य महायोगी गुरु गोरखनाथ जी ने बड़े ही निर्ममतापूर्वक अपनी वाणी एवं आचरण से प्रहार किया। इन्होंने रामपंथ और ध्वजपंथ नामक दो पंथों की भी स्थापना की।

गोरखनाथ के आन्दोलन का प्रभाव भारत की सामान्य जनता पर तो पड़ा ही, साथ ही साथ भारतवर्ष की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य में भी नाथपंथ का प्रभाव प्रचुर रूप से देखने को मिला। जहाँ सभी भाषाओं में गोरखनाथ के लोकोत्तर व्यक्तित्व से सम्बन्धित किंवदन्तियाँ तथा लौकिक कथाएँ देखने को मिल जाती हैं।

गुरु गोरखनाथ का प्रभाव भक्तिकाल में सर्वाधिक देखने को मिला। मलिक मुहम्मद जायसी भी इस पंथ से प्रभावित दिखाई देते हैं। उन्हें नाथपंथ के संस्थापक गोरखनाथ किसके शिष्य हैं तथा उनकी कीर्ति कहाँ तक फैली हुई है, इसकी पूर्ण जानकारी थी–

'चली भगति सगरी सयंसारा।
कीरति गई समुद्रहि पारा।।
गोरख सिद्ध कीन्ह सुनिफेरा।
चेलानाथ महंदर केरा।'

जायसी गोरखनाथ जी के दिव्य स्वरूप से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने गोरखनाथ को 'गुरु' अर्थ में रूढ़ि सा मान लिया–

'बिना गुरु पंथ न पाइय, भूलै सो जो भेंट।
जोगी सिद्ध होई तब, जब गोरख सौं भेंट।।'

भारतीय कृष्ण गाथाओं में उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर गोपियों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं, किन्तु जायसी कृत 'कन्हावत' में यह कार्य गोरखनाथ द्वारा किया गया। जायसी ने कृष्ण गाथाओं की प्राचीन परम्परा को तोड़ कृष्ण–कथा का एक नया स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया, जिसमें गोरखनाथ के द्वारा गोपियों को योग मार्ग की शिक्षा दिलवाई एवं गोरखनाथ के योग तथा कृष्ण के

योग की तकरार भी इसी रचना में बिम्बित हुई–

'सुनि कै उठा कनु सो भोगी।
देखौं कइस सिद्ध वह जोगी।।
भगति सहंस इस को है भए।
भगति कहत गोरख पै गए।।'

जायसी ने योगी के स्वाभाविक एवं परम्परागत वर्णन के अतिरिक्त 'योगिनी' रूप का वर्णन भी किया–

'जोगिनी मेख वियोगिनी कीन्हा।
सींग सबद भूत तत लीन्हा।।
विरह भभूत जता बैरागी।
छाला, क्रोध, जाप कंठ लागी।।
मुद्रा स्रवन नाहिं थिर जोऊ।
तन तिरसूल अधारी पिऊ।।'

गोरखपंथियों का मत हठयोग पर आधारित रहा है। हठयोग की परम्परा काफी प्राचीन रही है एवं गोरखनाथ और उनके गुरु मछन्दरनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) ने इसे व्यापक और व्यावहारिक रूप प्रदान किया था। लोक विश्वास को लेकर जायसी ने काल–विपर्यय की उपेक्षा कर गोरखपंथी सिद्ध को कृष्ण काल में उपस्थित कर योग और भोग की महत्ता सामने रखने की चेष्टा की है–

'सुनहुन सबल उतर हमारा।
का करबेउ लइ जोग तुम्हारा।।
परगट विद्या परगट भेसू।
काज ना आवै यह उपदेसू।।
योग भला जोगी कोई जाने।
भोग करत बढ़ बिनु पहिचाने।।'

आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द की 'चन्द्रावली' नाटिका में जोगन का वेश–विन्यास और अधिकांश कथ्य नाथ–सम्प्रदाय के अनुरूप ही है। महायोगी गोरखनाथ के उच्चादर्श के योगदान की सामाजिक उपयोगिता एवं महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। सम्पूर्ण सन्त साहित्य के चिन्तन–मनन से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय से ही नहीं इतर सम्प्रदायों से भी आचार एवं संयम को लेकर लोहा लिया। तभी तो इन्द्रिय–निग्रह तथा 'यहु मन सकती, यहु मन सीव, यहु

मन पंचतत्त्व का जीव।।' यहु मन लै जै उन्मन रहै, तीनि लोक की बाता कहै।। के रूप में सर्वान्तर्यामी आगत-अनागत बिनु स्वरूप में तथा संयम एवं सदाचार के आदर्श के रूप में गोरखनाथ के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा सम्भव हो सकी।

भारत में कोई ऐसी भाषा नहीं जिसमें महायोगी गोरखनाथ जी से सम्बन्धित साहित्य न पाया जाता हो। तुलसीदास जी के कथन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि गोरखनाथ जी न होते तो संतसाहित्य नहीं होता। गोरखनाथ जी तथा अन्य नाथ सन्तों की योगसाधना का प्रभाव हिन्दी साहित्य के साथ-साथ मराठी साहित्य, तेलुगु, उड़िया, कन्नड़, तिब्बती, चीनी साहित्य पर भी पड़ा। बंगला काव्य 'गोरक्ष विजय' में गोरखनाथ जी के अयोनिज प्राकट्य पर प्रकाश पड़ता है। तमिल के तिरूमूलर 18 सिद्धों के प्रथम सिद्ध कवि हैं। भारद्वाज संहिता में कहा गया है- 'मंजुनाथो हि गोरक्षं मंजुनाथ मवैक्षत्' इसी प्रकार मलयालम साहित्य में भी नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट है, उड़िया साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

शिशुवेद महायोगी गोरखनाथ प्रणीत ग्रन्थ उड़िया, चन्द्रशेखरनाथ प्रणीत 'गोरक्ष संहिता' सोलहवीं सदी की है। उड़िया की लोक परम्पराओं में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ और योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ का उल्लेख आता है। मराठी साहित्य में ज्ञानदेव जी अपनी ज्ञानेश्वरी में कहते हैं कि "मुझे यह ज्ञान परम्परागत प्राप्त हुआ है।" इसी प्रकार तेलुगु के सन्त बेमन वीर ब्रह्म आदि ने गुरु गोरक्षनाथ जी के भावों का अनुसरण किया। उत्तरांचल का लोकसाहित्य भी महादेव गुरु गोरक्षनाथ जी तथा नाथ सन्तों की गाथाओं के लिए समृद्ध है। यहाँ न केवल स्थानीय मन्दिर व पर्वत शिखरों के नाम भी नाथ सिद्धों के नाम से प्रसिद्ध हैं अपितु बदरीनाथ, केदारनाथ के साथ नाथ शब्द नाथ सन्तों के प्रभावों के कारण ही जुड़े।

गढ़वाली लोकगीतों में गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, सत्यनाथ, चौरंगीनाथ, नृसिंहनाथ, बटुकनाथ आदि सन्तों का बार-बार उल्लेख मिलता है जो तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, झाड़-फूँक के लिए प्रसिद्ध हैं। लोकगाथाओं में यहाँ जागर गाथाएँ प्रसिद्ध हैं और उन सिद्धों के अवतरण के लिए गाये जाते हैं। गुरु गोरक्षनाथ व नाथ सन्तों का प्रभाव सन्त-साहित्य के साथ-साथ तत्कालीन राजवंशों पर भी था।

गोरखनाथ जी का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक और प्रेरणादायक है। नाथों, सिद्धों के साहित्य और सिद्ध और नाथ लेखकों को लेकर जितने भी भ्रम हिन्दी आलोचना में हैं उनके निराकरण में उनके व्यक्तित्व विश्लेषण से मदद मिलती है। नाथ सिद्ध साहित्य बुनियादी तौर पर मिथ मंजन करता है। जो लोग नाथों-सिद्धों के बारे में मिथ बनाकर स्टीरियोटाइप समीक्षा लिखते रहे हैं, वे जानते हैं कि सिद्ध और नाथ साहित्य को स्टीरियोटाइप ढंग से नहीं पढ़ा जा सकता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- "गोरक्षनाथ अपने युग के महान अभिनेता थे। उन्होंने जिस

धातु को छुआ वही सोना हो गया।" गोरक्षनाथ और अन्य कवियों की विशेषता है कि उन्होंने कविता को समाज के ज्वलन्त सवालों से जोड़ा। सामाजिक कुरीतियों और अन्धविश्वासों का विरोध करना बहुत बड़ा काम है और कविता की नयी सामाजिक भूमिका की तलाश भी है। कविता को श्रृंगार और दरबार के विषयों के दायरे से निकालकर बाहर लाना और जीवन के नये विषयों पर कविता लिखने के लिए लेखकों को प्रेरित करना महत्त्वपूर्ण काम है।

"गोरक्षनाथ की संगठन शक्ति अपूर्व थी। उनका समर्थ धर्मगुरु का व्यक्तित्व था। उनका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल, बुद्धि भावावेश से एकदम अनाविल और कुशाग्र तीव्र थी। उनके चरित्र में कहीं भाव-विह्वलता नहीं है, जिन दिनों उन्होंने जन्म ग्रहण किया था, उन दिनों भारतीय धर्म साधना की अवस्था विचित्र थी। शुद्ध जीवन सात्विक वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना उन दिनों निम्नतम सीमा तक पहुँच चुकी थी। गोरक्षनाथ ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया।" "वे स्वयं पण्डित थे, पर यह अच्छी तरह जानते थे कि पुस्तक लक्ष्य नहीं, साधन है। उन्होंने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से नहीं, वेद से नहीं परन्तु फिर भी उन्होंने समस्त प्रचलित साधना मार्ग से उचित भाव ग्रहण किया। वे ज्ञान के उपासक थे और लेशमात्र भी भावुकता को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे।

नाथों-सिद्धों ने किताबें नहीं लिखीं, काव्यग्रन्थ नहीं लिखे क्योंकि इन रूपों के साथ लेखक की समझ भी जुड़ी थी। वे नये किस्म के मीडियम और विधा रूप निर्मित करते हैं। वे 'संवादग्रन्थ' लिखते हैं। वे काव्यात्मकता और वैचारिक वर्चस्व को सीधे चुनौती देते हैं। वे कविता में 'संवाद' को ले आते हैं। गोरखपंथी मानत हैं- "घर-घर में पुस्तक के बोझ ढोने वाले विद्यमान हैं, नगर-नगर में पण्डितों की मण्डली मौजूद है, वन-वन में तपस्वियों के झुण्ड वर्तमान है। किन्तु परब्रह्म को जानने वाला कोई नहीं है।"

नाथपंथियों की भाषा लोकभाषा है। भाषा शिष्ट और साहित्यिक भाषा न होकर साधारण जन की भाषा है। उसकी वर्ण्य वस्तु लोकजीवन में गृहीत चरित्रों, भावों और प्रभावों तक सीमित है। उसकी रचना में व्यक्ति का नहीं बल्कि समूचे समाज का समवेत योगदान है। यही कारण है कि लोक-साहित्य पर व्यक्ति की छाप न होकर समग्र लोक की छाप होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. परमार, श्याम, मालवी लोकसाहित्य
2. अग्रवाल, रामनारायण, संगीत : एक लोकनाट्य परंपरा
3. पतंजलि, महाभाष्य
4. भर्तृहरि, वाक्यपदीयम्
5. जुनेजा, वेद प्रकाश, नाथ सम्प्रदाय और साहित्य

6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदाय
7. कविराज, गोपीनाथ, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह
8. ब्रिग्स, जी.डब्लू., गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज
9. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
10. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा
11. बनर्जी, अक्षय कुमार, नाथ योग : एक परिचय

नाथपंथ-साहित्यिक सिंहावलोकन

डॉ. भानु प्रताप सिंह*

साहित्य सात्विक संकल्पना है जो व्यक्ति को संस्कारित कर संस्कृति बोध कराते हुए सामाजिक समरसता की अविरल धारा में चलना सिखाती है। साहित्य समाज का वह मेरुदण्ड है जिस पर मनुष्य अपना कर्म-धर्म सम्पादित करते हुए अपने जीवन-चक्र को मोक्ष मार्ग पर चलायमान करता है। सृष्टि संरचना में परम पिता ब्रह्मा ने सजीव एवं निर्जीव का निर्धारण कर संसार को कालचक्र की कड़ियों में परिभ्रमण करने का चक्रीय सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। सजीवता एवं निर्जीवता दोनों ही अद्वैतवाद की अवधारणा से ओत-प्रोत हैं, यानि ईश्वरत्व का अखण्डत्व आत्मा के अमरत्व एवं प्रकृति के समस्त तत्त्वों में समत्व के रूप में सन्निहित है। भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता दर्शन एवं धर्म के उच्च आदर्शों को मानवीय जीवन शैली में समन्वित करना है। हृदय को परिष्कृत करने के साथ ही जीवन को पवित्र एवं सदाचारानुमोदित बनाने में हमारे साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है, यों तो हिन्दू जीवन पद्धति में दर्शन एवं धर्म में पार्थक्य ही नहीं है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में यह बात और भी प्रखरता से सम्पुष्ट होती है। दर्शन ही धर्म का निर्माण करता है और धर्म ही दर्शन के लिए जीवन की पवित्रता प्रस्तुत करता है। इस प्रकार दर्शन एवं धर्म हमारे साहित्य के निर्माता हैं। सन्त तुलसी और मीरा की कविता ने हमारे साहित्य को कितना गौरवान्वित किया, यह समय ने प्रमाणित कर दिया है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने प्रारम्भ से ही उन समस्त सांस्कृतिक परम्पराओं से ओत-प्रोत रहा है जो हिन्दी के जन्म के पूर्व ही अखिल भारतीय रूप में प्रचलित रही हैं। संस्कृत साहित्य में वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया ने बौद्ध-धर्म के प्रचारित होने का अवसर दिया और यह बौद्ध धर्म न केवल राजनीतिक केन्द्रों में शासक वर्गों की रुचि का विषय रहा प्रत्युत जनता के विश्वास का मेरुदण्ड बन गया। आठवीं शताब्दी में भी बौद्ध-धर्म की महायान शाखा जिसने जनता में वर्गभेद को हटाकर धर्म की साधना का मार्ग अत्यन्त सुगम कर दिया था, आकर्षण का केन्द्र बनी ही रही। यह महायान शाखा आगे चलकर अनेक सम्प्रदायों में विभाजित हो गयी जिनमें वज्रयान और

*द्वारा- नारद सिंह, गली नं. 05, जगदेवनगर, आरा, पो. अनाइठ, थाना-नवादा, जिला-भोजपुर, पिन-802301; मो. 9801447415

सहजयान सम्प्रदाय प्रमुख थे।

हिन्दी साहित्य के विकास काल को संधिकाल के रूप में जाना जाता है जिसमें सिद्ध कवियों का प्रादुर्भाव हुआ और ऐसे सिद्धों की संख्या चौरासी बतायी गयी है। चौरासी सिद्धों का समय 797 से 1257 ई. तक माना गया है। बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक नाथपंथ अपने चरमोत्कर्ष पर रहा। इसी पंथ ने हमारे साहित्य में सन्त साहित्य की नींव डाली, जिसके प्रथम कवि कबीरदास (जन्म सं. 1456) हुए। इस प्रकार सन्त साहित्य का आदि सिद्धों को, मध्य नाथ-पंथियों को और पूर्ण विकास का कालखण्ड कबीर से प्रारम्भ होनेवाली परम्परा में नानक, दादू, मलूकदास और सुन्दरदास आदि को माना जाता है। नाथपंथ के हठयोग एवं विचारधाराओं पर सन्त कबीर की व्यापक आस्था थी, क्योंकि उन्होंने न जाने कितनी बार कुण्डलिनी, इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा आदि के सहारे अनहद नाद सुनने की रीति बतलायी है।

सिद्धों के प्रधान कवि गोरक्षपा को नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है क्योंकि इन्होंने सिद्ध सम्प्रदाय के वज्रयान परम्पराओं में संशोधन कर नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और गोरखनाथ के रूप में विख्यात हैं। परमपूज्य महात्मा गोरखनाथ की अग्रांकित पंक्तियाँ शैव साधना को चरितार्थ करती हुई महादेव महिमा को सर्वोन्नत बताती हैं।

परतरपवना रहै निरंतरि। महारस सीझै काया अभिअंतरि।।
गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिआ। शिव शक्ती ले निज घर रहिआ।।

-गोरखबानी, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

नाथपंथ की जीवन शैली एवं भवसागर मुक्ति साधना में भोग पद्धति की महत्ता महादेव की भक्ति में निहित है, जो अग्रलिखित पंक्ति से प्रमाणित है-

"जेकर नाथ भोलेनाथ उ अनाथ कैसे होई"

सिद्धों की विचारधारा और उनके रूपकों को लेकर ही नाथपंथ ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में अनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण किया और नाथपंथी शैली का अनुसरण करते हुए उन्होंने निरीश्वरवादी 'शून्य' को ईश्वरवादी 'शून्य' में परिवर्तित कर दिया।

गोरखबानी की निम्नलिखित कवित पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण दर्शन हैं-

सुंनि ज माई सुंनि ज बाप। सुंनि निरंजन आपै आप।।
सुंनि कै परचै भया सभीर। निहचल जोगी गहर गंभीर।।

इस प्रकार बौद्ध धर्म के मंत्रयान से वज्रयान, वज्रयान से सहजयान और सहजयान से नाथ-सम्प्रदाय की विकासोन्मुख परम्परा परिलक्षित है। यह तथ्य भी निःसन्देह मान्य है कि नाथपंथ

पर कौल-पंथ के कुछ प्रभाव हैं। कौल-पंथ में अष्टांग योग की जो भावना है वह साधना के रूप में नाथ-सम्प्रदाय में अवश्य चली आयी है, किन्तु अभिचारों में प्रवृत्ति का तीव्रतम विरोध नाथपंथ ने किया है। अष्टांग योग शारीरिक चैतन्यता और तेजयुक्तता को समर्पित साधना है और शैवत्व सान्निध्य स्रोत की अविरल बहती धारा है। भारतीय दन्तकथाओं में श्री गोरखनाथ सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान माने गये हैं। उनमें प्रारम्भ से ही देवत्व का दिव्यत्व कूट-कूट कर भरा पाया गया है। कभी-कभी तो इन्हें शिव के समतुल्य बतलाया गया है। यह संताप की बात अवश्य है कि जिस गोरखनाथ का भारत के धार्मिक इतिहास में इतना बड़ा महत्त्व है, उनके विषय में प्रामाणिक अन्वेषण अभी तक संतोषजनक रूप से नहीं हुआ है।

नाथपंथ के अनुयायी कनफटे सन्त कहलाते हैं क्योंकि ये अपने कर्ण के मध्य भाग को फाड़कर उसमें बड़ा छेद कर लेते हैं और इस छिद्र में स्फटिक का कुण्डल भी धारण करते हैं। गोरखनाथ जी धर्म साहित्य के एक बड़े सन्त कवि थे, जिनकी बहुत सी संस्कृत पुस्तकें आज भी प्रचलित हैं, जो इस प्रकार हैं- गोरक्ष शतक, चतुर्शीत्यासन, ज्ञानामृत, योगचिन्तामणि, योग सिद्धान्त पद्धति, विवेक-मार्तण्ड और सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति इत्यादि। नाथपंथ प्रधान रूप से निवृत्तिमार्गी ज्ञान योग के अन्तर्गत 'नाथ' का अर्थ इस सम्प्रदाय में 'मुक्तिदान करनेवाला' माना गया है जो 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में इस प्रकार उल्लिखित है-

अस्माकम्मते शक्तिः सृष्टि करोति,
शिवः पालनं करोति,
कालः संहरति,
नाथो मुक्तिं ददाति।

सांसारिकता के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयों से स्वतंत्रता तभी मिल सकती है, जब मनुष्य के मन में वैराग्य भावना का सूत्रपात हो जाता है। इस वैराग्य भावना का जागरण नाथपंथ में गुरु-मंत्र या गुरु-दीक्षा से प्रारम्भ होता है जो शिष्यों के उपवासादि और अत्यन्त कठिन साध्य आचरणों के सम्बन्ध में सन्तुष्टि के उपरान्त ही समर्पित किया जाता है। नाथपंथ की विविध साधनाओं में इन्द्रिय-निग्रह से आसन, प्राण-साधना से प्राणायाम और मन-साधना से प्रत्याहार सिद्ध होने पर साधक में नाड़ी-साधना और कुण्डलिनी जागरण की शक्ति उत्पन्न होती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी के सचेतन होने पर मूलाधार चक्र के त्रिकोण में स्थित निम्नमुखी कुण्डलिनी तेज सम्पन्न होकर जागृत होती है और सुषुम्ना नाड़ी के भीतर ही भीतर ऊपर की ओर बढ़ती है। इस क्रिया की अनवरत साधना में रसायन या रस-विद्या की सहायता से शरीर की दुर्बलताओं और विकारों को दूरकर कायाकल्प होने का विधान बतलाया गया है।

'शिव' ही नाथपंथ के 'आराध्य देव' हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम योग की शिक्षा पार्वती

(शक्ति) को दी थी। तभी मत्स्येन्द्रनाथ ने उस योग शिक्षा को मछली का रूप धारण कर गुप्त रूप से सुना और तत्पश्चात् उक्त योग शिक्षा का ज्ञान उन्होंने अपने शिष्य गोरखनाथ को दिया। गुप्त रूप से योग शिक्षा प्राप्ति के कारण अभिशप्त हुए अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का महात्मा गोरखनाथ ने ही उद्धार किया। गोरखनाथ ने योग-मार्ग का जो प्रचार किया, उसमें 'शिव' एवं 'शक्ति' को आदितत्त्व माना गया है। शिव-शक्ति की महिमा को उन्होंने अपने इस श्लोक में व्यक्त किया है-

यहु मन सकती यहु मन सीव। यहु मन पाँच तत्त का जीव।।
यहु मन ले जै उनमन रहै। तौ तीन लाक की बातां कहै।।

प्राण-साधना निम्न पंक्तियों में परिलक्षित है-

आसण वैसिवा पवन निरोधिवा, थांन मांन सब धन्धा।
बदंत गोरखनाथ आतमां विचारंत ज्यूं लज दीरौ चन्दा।।

उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ मन-साधना को चरितार्थ करती हैं-

नाथ बोलै अमृत बांणौ। बरिषैणी कंबली पांणी।
गाड़ि पड़रवा बाँधि लै षूटा। चलै दमामा बजिले ऊंटा।

गोरखनाथ ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खण्डन करते हुए नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ जिसमें सदाचार का आश्रय लेकर कार्यों में ही तीर्थ की अनुभूति मानी गयी है। नाथपंथ में एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गयी है, वहीं दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया है। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहजमार्ग की व्यवस्था कराने का शक्तिशाली प्रयोग किया गया है।

नाथ सम्प्रदाय में 'नवनाथ' के अवदान की व्याख्या की गयी है, जिसमें निम्न नाथ महिमामण्डित हैं-

(1) आदिनाथ (2) मत्स्येन्द्रनाथ (3) गोरखनाथ (4) गाहिणीनाथ (5) चर्पटनाथ (6) चौरंगीनाथ (7) ज्वालेन्द्रनाथ (8) भर्तृनाथ या भरथरी (9) गोपीचन्दनाथ, इत्यादि।

इस प्रकार नाथपंथ के साहित्यिक सिंहावलोकन से यह प्रमाणित हो जाता है कि योग-साधना और शैव उपासना की सात्विक आधारशिला पर अपनी जीवन शैली का अनुशीलन करते हुए समस्त चराचर जगत् के कल्याणार्थ हर व्यक्ति एक दूसरे के प्रति समर्पण एवं परहित भावना पोषण कर अपना जीवन सुन्दर, सुशील, सार्थक एवं सफल बनाते हुए अमर लोक का अवलम्बन पाने में

समर्थ बन जाता है। सत्य, अहिंसा, न्याय, प्रेम की पगडण्डियों पर गतिमान मानव इस क्षणभंगुर जीवन में कीर्तिमान स्थापित करते हुए भवसागर से मुक्ति का अधिकारी बन पाता है। परहित पथ पथिक के रूप में मेरी 'पथिक' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ मानवीय जीवनादर्श को उन्नत करने में सहायक बनकर नाथपंथ की अवधारणा एवं आदर्शों को महिमामण्डित करती है:

पावन पथ पर पथिक चलो बन राही विश्वविजय के,
चीर विघ्न बाधाओं को मग मूल मिटाते भय के,
युगद्रष्टा ऊर्जस्वित उर तुम आज पुकार समय के,
नीयति नीति के संरक्षक हो नाशक बनो अनय के,
जल में, थल में और गगन में या अरण्य बीहड़ हो,
जहाँ-तहाँ पर ऊँचे पर्वत खड़े हों बनकर बाधा,
कदम-कदम पर शूल बिछाये पापी, नीच, अधर्मी,
शूलों का तुम मूल मिटाकर मग में बढ़ते जाओ,
पथिक पारकर विषम-विकट पथ वैभव विश्व सजाओ।
राह ढूँढता कौन पथिक वह चढ़ा समय के रथ पर,
भ्रष्टाचार भयावह बनकर घूम रहा जिस पथ पर,
इस त्रिलोक के किस त्रिकाल में कहाँ कौन पथ ऐसा,
काम, क्रोध, मद, लोभ जहाँ पर काँटे नहीं बने हों,
पुण्यमयी पथ पर प्रसरित कंकाल, कुलिश, काँटों को,
चलो हटाते हे पथिकों निज के पावन पौरुष से,
अथवा अहित नहीं कर पर को, तुमको सदा चुभेंगे।

इस प्रकार उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' की संकल्पना सहित सृष्टि को सादर समर्पित हैं। साथ ही इस तथ्य में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि नाथपंथ की सर्वमंगल अवधारणा जनहित एवं राष्ट्रहित को उत्कर्ष प्रदान करने में सफलीभूत हुई है।

नाथ सम्प्रदाय : उद्भव और विकास

सुबोध कुमार मिश्र* एवं डॉ. अजय कुमार सिंह**

'धर्म' एक ऐसा व्यापक शब्द है जो सम्बन्धित समाज का इतिहास और उसके जीवन की भूमिका प्रस्तुत करने में सर्वतोभावेन समर्थ होता है। विशेषकर भारतीय धरा-धाम पर तो 'धर्म' शब्द में समाज विशेष की सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा जीवन प्रणाली की प्रक्रिया और निदर्शन प्रस्तुत होता है।

निस्सन्देह भारतीय संस्कृति में जीवन का मूल आधार धर्म है। 'धर्म' शब्द से जहाँ एक तरफ दैनिक जीवन में उपयोगी कर्तव्य अभिप्रेरित हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता विभिन्न सम्प्रदायों के व्यावहारिक जीवन से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध की रही है। इनमें निरा आदर्श या कर्मकाण्ड नहीं रहा, अपितु जीवन के नैतिक मूल्यों पर विशेष बल प्रदान किया गया है। सुमेरियन, बेबीलोनियन, यूनानी एवं कतिपय अन्य पाश्चात्य सभ्यताओं के धर्मों की भाँति भारतीय धर्म एवं दर्शन ने इस बात की अनुमति नहीं दी कि मात्र आराध्य देवों के प्रति स्तुति-वाचन या हवि (बलि) प्रदान कर देने से ही वह धर्मनिष्ठ कहा जा सकता है; और उसके प्रतिपादन में वह सुख, ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं सन्तति आदि भौतिक समृद्धि प्राप्त कर सकता है। भारत में लगभग सभी पन्थों एवं सम्प्रदायों में पारलौकिक या भौतिक सुखों की समुपलब्धि के निमित्त धार्मिक कर्मकाण्डों के निष्पादन के साथ-साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक कर्तव्यों के परिपालन पर विशेष बल दिया गया है। वास्तव में धर्म, व्यक्तियों के आचरण एवं व्यवहार की एक संहिता है जो उनके कार्यों को सुव्यवस्थित ढंग से नियमित, संचालित एवं नियंत्रित करता है। भारत में आचार अथवा सदाचार को धर्म का लक्षण स्वीकार किया गया है[1]-

"आचार लक्षणो धर्मः सन्तश्चारित् लक्षणः।
साधुनां च यथावत्तमेतदाचार लक्षणम्॥"

धर्म की अपनी विशिष्ट अवधारणा के विकास के साथ-साथ भारत-भूमि अपनी सभ्यता के

*प्रवक्ता-प्राचीन इतिहास, शोध सहायक, गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोध एवं अध्ययन केन्द्र, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
**पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

उषाकाल से ही विभिन्न पन्थों एवं अनेक सम्प्रदायों की उद्गम-स्थली रही है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत यहाँ विविध मत एवं सम्प्रदाय; जैसे- वैदिक, सनातन, वैष्णव, शैव, शाक्त, पाशुपत, जैन, बौद्ध एवं सिख आदि मत समय-समय पर अस्तित्व में आये। इन्हीं विविध धार्मिक मतों एवं सम्प्रदायों में एक अतिविशिष्ट सम्प्रदाय है- 'नाथ सम्प्रदाय'।

नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति को रेखांकित करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है। 'नाथ' शब्द की व्युत्पत्ति इसके मूल 'नाथ' में 'अ' प्रत्यय लगाकर होती है। इस शब्द में कई भिन्न-भिन्न अर्थ, जैसे- उपताप, ऐश्वर्य, आशीर्वाद, याचना आदि मिलते हैं।[2] फिर भी कोशग्रन्थों में 'नाथ' शब्द का अर्थ साधारणतया प्रभु, अधिपति, कर्ता, रक्षक रूप में ही उल्लिखित मिलता है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि 'नाथ' शब्द का सम्बन्ध न तो किसी वंश विशेष के नाम के साथ जोड़ा जा सकता है और न ही उसे उक्त प्रकार से लौकिक देववाची ही कहा जा सकता है। बावजूद इसके हम इसे 'स्वामी' के अभिप्राय का एक सूचक मान सकते हैं। ऋग्वेद[3] के एक प्रसिद्ध सूक्त के अन्तर्गत 'नाथ' शब्द का प्रयोग 'समर्थ' एवं 'सक्षम' के अर्थ में किया गया है। वहीं एक स्थल पर इस शब्द का प्रयोग 'आश्रय ग्रहण करने करने योग्य स्थान' के लिए प्रयुक्त प्रतीत होता है।[4] बौद्ध धर्म में प्रसिद्ध ग्रन्थों, जैसे- लंकावतार सूत्र, अभिधानव्यदीपिका में 'नाथ' शब्द को 'शास्ता' अथवा 'तथागत' का समानार्थी समझा गया है।[5] उनकी यह एक विशेषता भी जान पड़ती है कि उनके द्वारा सूचित किये जाने वाले महापुरुष वस्तुतः 'स्वानुभूतिवेद सत्य' के प्रति आस्था रखने वाले थे।

जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों में से प्रथम ऋषभदेव को आदिनाथ भी कहा गया है। इसी प्रकार 22वें और 23वें तीर्थंकर क्रमशः नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ के नाम में भी 'नाथ' शब्द सम्मिलित है जिसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'नाथ' शब्द पहले प्रभु या स्वामी जैसे अर्थों का ही सूचक क्यों न रहा हो, कालान्तर में यह ऐसे महापुरुषों का भी बोधक बन गया जिन्हें अतिमानवत्व अथवा देवत्व भी प्रदान किया जा सकता था।[6] वस्तुतः 'नाथ' शब्द अति प्राचीन है। अनेक अर्थों में इसका प्रयोग वैदिक काल से ही होता आया है। अथर्ववेद में 'नाथित' एवं 'नाथ' शब्दों का उल्लेख अनेकशः मिलता है।[7] संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त ने 'नाथ' शब्द को सद्गुरु के अर्थ में ग्रहण किया है। डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने 'नाथ' को नाथपंथ का मान्य परमतत्त्व स्वीकार किया है।[8]

नाथ सम्प्रदाय की प्राचीनता के सन्दर्भ में अनेक इतिहासकारों ने गहन शोधकार्य किया है। ब्रिग्स[9] को 971 ई. का एक लेख उत्तर भारत के एक मन्दिर से प्राप्त हुआ है और इसी आधार पर उनका कहना है कि वह मन्दिर नाथ सम्प्रदाय का ही रहा होगा। उल्लेखनीय है कि महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन के शासन काल में ह्वेनसांग नामक एक चीनी बौद्ध भिक्षु भारत आया था तथा लगभग 630 से 640 ई. तक उसने न सिर्फ वर्द्धन साम्राज्य में, बल्कि लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष में भ्रमण किया था। उसने अपने इस दस वर्षीय भ्रमण के अनुभवों को ग्रन्थ के रूप में लिपिबद्ध किया जिसे हम

'सी-यू-की' के नाम से जानते हैं। ह्वेनसांग के इस यात्रा-विवरण में भी नाथ पंथ की चर्चा आती है।[10] रोम के प्रसिद्ध विद्वान् टेसीटरी का मत है कि कनफटा योगी (नाथ योगी) लोग बौद्ध मत के प्रारम्भिक समय में भी विद्यमान थे, किन्तु उनकी योग्यता का विकास बौद्ध मत के पतन काल में ही हुआ।[11]

ध्यातव्य है कि नाथ योगी आज भी कुण्डल धारण करते हैं। कुण्डल धारण करने की प्रथा निर्विवाद रूप से प्राचीन है। सालसेटी, एलोरा और एलीफैण्टा की गुफाओं में जिनकी प्राचीनता लगभग 8वीं शताब्दी तक रेखांकित है, शिव की ऐसी अनेक योग-मूर्तियाँ हैं जिनके कानों में बड़े-बड़े कुण्डल ठीक उसी ढंग से पहनाये गये हैं जिस ढंग से नाथपंथी योगी धारण करते हैं। वर्तमान में तमिलनाडु प्रदेश के उत्तरी आर्काट जिले में परशुरामेश्वर मन्दिर के अन्दर स्थापित शिवलिंग पर शिवजी की एक मूर्ति है जिसके कानों में नाथपंथी योगियों जैसे ही कुण्डल हैं। टी. ए. गोपीनाथ राव प्रभृति विद्वान् का मत है कि यह शिवलिंग दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी ईस्वी का है।[12] दूसरी शताब्दी ई.पू. और उसके बाद की अनेक मानव मूर्तियों के फटे हुए कान और उनमें नाना प्रकार के कुण्डल देखे जा सकते हैं।[13]

नाथ सम्प्रदाय का मूल खोजने के लिए हमें उसकी साधना पद्धति एवं दर्शन का आश्रय लेना अनिवार्य है। नाथ सम्प्रदाय में योग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्थूलतः नाथ मार्ग एक योग-प्रधान मार्ग है। यद्यपि कि नाथ योग की अपनी विशिष्ट चिन्तन-पद्धति एवं साधना प्रणाली पूर्णतः विकसित एवं बहुस्वीकृत है, तथापि सूक्ष्मावलोकन किया जाय तो भारतीय तत्त्व-चिन्तन की मूलधारा ही इसका भी उपजीव्य है। नाथयोग में शिव-शक्ति की जो परिकल्पना है वह स्वयमेव प्रमाणित करती है कि नाथ सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। सृष्टि के सृजन के मूल में शिव-शक्ति की परिकल्पना भारतीय धर्म-साधना का बीज रूप है। शिव और शक्ति एक ही अद्वैत तत्त्व के विविध रूप हैं। यही नाथ योग का मूल सिद्धान्त है। यह बहुत सम्भव है कि नाथ मत के विकास के पूर्व योग साधना और शिव एवं शक्ति की उपासना करने वाले मत अलग-अलग विकसित हुए हों और नाथयोगियों ने दोनों को मिलाकर अपने मत को विकसित किया हो, तथापि यह संश्लेषण भी सहस्रों वर्ष पूर्व घटित हुआ होगा।

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति का मूल रूप औपनिषदिक योगधारा तथा आगम धारा में सम्मिलित है। यौगिक प्रक्रिया तत्सम्मत रूप में मुनि परम्परा से ही श्रमण धारा तथा आगम धारा के रूप में द्विधा विभाजित हुई। ऋग्वेद के व्रात्ययोगी रुद्र की उपासना करते थे तथा प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं को विशिष्ट महत्त्व देते थे। ऐसे योगी साधना के द्वारा मृत्यु पर कर्मों के रूप में कर्मों से दूर किसी अरूप अथवा निराकार वस्तु के ध्यान व चिन्तन में निरत रहते थे।[14] ऋग्वैदिककालीन समाज में ही यह विश्वास जड़ हो चुका था कि व्यवस्थित जगत् की सारी प्रक्रिया

व्यवस्थित, संचालित एवं नियमित करने वाली कोई अलक्ष्य परोक्षशक्ति (योग) अवश्य है।[15]

योग साधना के लिए चित्त की निर्मलता का विधान अत्यन्त व्यवस्थित रूप में नाथ योग में प्राप्त होती है। वह किसी न किसी रूप में उपनिषदों और गीता में भी सर्वत्र मान्य है। इस आधार पर भी नाथ योग की प्राचीनता औपनिषदिक काल तक रेखांकित की जा सकती है। कठोपनिषद्[16] में तो स्पष्ट कहा गया है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा ही योग है। नाथ योग में जिस प्रकार शिव और शक्ति के स्वरूप का जिस प्रारूप में निर्वचन किया गया है लगभग उसी रूप में वेदान्त में ब्रह्म और माया, सांख्य में प्रकृति और पुरुष तथा वैष्णवागमों में नारायण एवं लक्ष्मी अथवा लीलाधारी कृष्ण एवं राधा, मर्यादा पुरुषोत्तम – राम एवं सीता के स्वरूप का निर्वचन हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमतत्त्व के स्वरूप, जगत् के साथ उसके सम्बन्ध और उसे प्राप्त करने के साधनों में जो चिन्तन उपनिषदों में वर्णित है, वह नाथ योगियों के एतद्विषयक चिन्तन की आधार भूमि के रूप में मान्य है।

नाथ परम्परा में गुरु गोरखनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह भी ध्यातव्य है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ महायोगी श्री गोरखनाथ के गुरु थे, साथ ही साथ यह भी सर्वविदित है कि दोनों सिद्ध पुरुष नाथ सम्प्रदाय के आरम्भिक चरणों में आविर्भूत हुए थे। इस कारण यदि इनमें से किसी एक का समय हम निश्चित कर सके तो मोटे तौर पर नाथ सम्प्रदाय की प्राचीनता को काफी हद तक रेखांकित किया जा सकता है। प्राप्त साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर हम इन दोनों नाथ सिद्ध के आविर्भाव काल पर विचार कर सकते हैं। जहाँ तक मत्स्येन्द्रनाथ के आविर्भाव के काल का प्रश्न है, उनका विभिन्न पुराणों में दी गयी कथाओं के आधार पर 'पद्मकल्प' के समय अस्तित्व में आना अनुमान किया गया है।[17] यह प्रागैतिहासिक तथ्य सा लगता है। इसी प्रकार गुरु गोरखनाथ का जन्म काल कार्तिक शुक्ल 13 के रूप में बिना किसी संवत् विशेष की ओर लक्ष्य करते हुए दिया गया मिलता है।[18] योगिसम्प्रदायाविष्कृति में यह प्रसंग आया है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शिष्य गोरखनाथ को युधिष्ठिर संवत् 1936 अर्थात् 1162 ई.पू. में अपना कार्यभार सौंपकर गिरिनाथ पर्वत जाकर समाधिस्थ हो गये थे।[19] इसके विपरीत जहाँ तक अन्य ऐतिहासिक प्रसंगों एवं उल्लेखों की बात है, उनके आधार पर केवल इतना ही परिणाम निकल पाता है कि ऐसे समय तक ये लोग अवश्य रह चुके होंगे। अर्थात् इनका आविर्भाव काल 9वीं–10वीं शताब्दी ई.पू. तक जा सकता है। और अन्त में केवल ऐसी सामग्रियाँ ही शेष रह जाती हैं जो अधिकतर अनुश्रुतियों, दन्तकथाओं या लोकगाथाओं पर ही अवलम्बित रहती हैं।

महाभारत के कर्ण पर्व में एक विशेष प्रकार की उपासना का ज्ञान होता है, जिसे पाशुपत व्रत कहा गया है। अर्जुन को 'पाशुपति अस्त्र' की प्राप्ति तपस्या और योग बल से ही हुई थी। विभिन्न

शास्त्रों में व्रतकर्ता की परिस्थिति एवं उद्देश्यों के आधार पर इस व्रत की अवधि बारह दिन से लेकर बारह वर्ष तक भी होती थी।[20] नाथ सम्प्रदाय की मान्य और प्रामाणिक रचना 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में योगी साधक प्राय: बारह वर्ष की अवधिपर्यन्त साधनारत रहा करते थे। शिवपुराण वायवीय संहिता के 9वें अध्याय के अनुसार भगवान् शिव के 28 अवतार योगाचार्य के रूप में मिलते हैं और प्रत्येक के शान्त चित्त वाले पन्थ शिष्यों का उल्लेख मिलता है। ये सभी सिद्धनाथ हैं। इनका शरीर भस्म से विभूषित है। ये प्राणायाम साधना में तत्पर रहने वाले हैं।

ये सिद्ध सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ, शिव-ज्ञान परायण, आसक्ति एवं द्वेषरहित, क्रोधशून्य, जितेन्द्रिय एवं सर्व हितकारी हैं।[23] पाशुपत शैवों के साथ नाथपन्थी साधना की एकता मिलती है। नाथपंथी साधक शिव या आदिनाथ के उपासक हैं।

गुजरात के काठियावाड़ जिले में स्थित विश्वप्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर से एक विशाल शिलालिपि, जो कि सम्भवत: 1278 ई. की है, प्राप्त हुई है। सम्प्रति यह शिलालिपि आज यूरोप में है तथा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इसका अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। डॉ. बूलर के अनुसार इस लिपि में लिखा गया है कि "पाशुपत सम्प्रदाय के प्रवर्तक लकुलीश स्वयं शिवावतार हैं।" हेमवती अभिलेख तथा मैसूर से प्राप्त बेलगाम अभिलेख में भी इस तथ्य का उल्लेख मिलता है।[22] कालान्तर में गोरक्षनाथ लकुलीश के अवतार माने गये। इस प्रकार पूर्वकाल के भागवतों द्वारा घोषित लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय भी परवर्ती नाथ सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गया।[23] नाथ सम्प्रदाय का सम्बन्ध कश्मीरी शैवमत, रसेश्वर सम्प्रदाय एवं कापालिकों से भी न्यूनाधिक रूप में सिद्ध हो जाता है। कश्मीरी शैव आचार्य अभिनव गुप्त ने मच्छन्दविभु नामक ग्रन्थ लिखा जो मत्स्येन्द्रनाथ से सम्बद्ध है। स्वयं गोरक्षनाथ द्वारा रचित ग्रन्थ 'महार्थ मंजरी' भी कश्मीरी अपभ्रंश में मिला है।[24] डॉ. शशिभूषण दास गुप्त ने नाथपन्थ को रसेश्वर सम्प्रदाय का विकसित रूप बताया है। कापालिक सम्प्रदाय शैव सम्प्रदाय में वाममार्गी है। उसे संशुद्ध कर गोरखनाथ ने पूर्व सम्प्रदाय के रूप में अन्तर्भुक्त होने की स्वीकृति दी। कापालिकों का मत षटचक्र और नाड़िका-निचय के कायायोग से सम्बद्ध था। यही कायायोग नाथपंथियों की अपनी विशेषता है। नाथपंथी हठयोग ग्रन्थ 'घेरेण्डसंहिता' में योग की शिक्षा चण्ड नामक कापालिक को दी गयी है। शबरतंत्र में 24 कापालिकों की जो सूची मिलती है उनमें से कई नाम वज्रयानी तथा नाथों की सूची से भी मिलते हैं।[25] शाक्त मत में भी नाथ मत के कुछ बीज तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। शाक्त मत मूलत: तंत्रानुसारी है, उसके उपदेष्टा 'नाथ' ही हैं। शाक्तों में कौल मार्ग को श्रेष्ठ बताया गया है। कौल मार्ग को अवधूत मार्ग भी कहा गया है। त्रिपुरा मत के तान्त्रिक आचार्य स्वयं को नाथ मतानुयायी कहते हैं।[26] गोरक्षसिद्धान्त संग्रह को लें तो इसके अनुसार नाथ मार्ग यद्यपि योग साधनापरक है, तथापि कौल, कापालिक आदि मार्ग नाथ पंथ द्वारा ही प्रकटीकृत है।[27] हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि मत्स्येन्द्रनाथ की मतानुवर्तिनी सिद्धा विमला देवी,

जिन्हें गोरक्षनाथ की शिष्या कहा गया है, उनके द्वारा स्थापित पन्थ 'आई पन्थ' था जो सम्भवतः किसी समय शाक्त मत से गोरक्षनाथ के योगमार्ग में अन्तर्भुक्त हो गया था।[28] रांगेय राघव[29] का अनुमान है कि मत्स्येन्द्रनाथ का मत आरम्भिक अवस्था में अधिकांशतः शाक्त प्रतीत होता है, किन्तु उनका दार्शनिक आधार कश्मीरी शैव सम्प्रदाय से विशेष भिन्न नहीं है।

अथर्ववेद की विकसित परम्परा में योग साधना का प्रभाव पांचरात्र मत पर भी पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है। डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने शैव एवं वैष्णव मतों के उद्‌गम को एक ही मूल से समीकृत किया है।[30] पांचरात्र में भक्ति को योग का ही एक रूप माना गया है। परमसंहिता में योग की सर्वश्रेष्ठता बताते हुए कर्मयोग द्वारा वासुदेव तत्त्व की प्राप्ति सम्भव बतायी गयी है।[31] यद्यपि कि पांचरात्र मत को वेदमूलक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। रामावत सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी राघवानन्द रामानुजी महात्मा होते हुए भी अवधूत मार्ग के उद्धारक थे। अवधूत दत्तात्रेय के अनुयायी थे जो गोरक्ष आदि योगियों के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत आ गये थे। योगियों के ही समान रामानन्द के वैरागी भी अपने को अवधूत कहा करते थे।[32] सहजिया वैष्णव पंथ रागतत्त्व को लेकर विकसित हुआ फिर भी अच्युतानन्ददास की शून्य संहिता इस पंथ को योग प्रभाव के अन्तर्गत होने का प्रमाण देती है। रमाई पण्डित द्वारा रचित शून्य पुराण इसे अवधूत परम्परा से जोड़ता है।[33] पांचरात्र मत में शक्ति एवं शक्तिमान ब्रह्मा की एकता शैवों की ही तरह तथा धर्मों की एकता के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है। शैव तथा शाक्तों ने जिस प्रकार सृष्टि कार्य शक्ति द्वारा कराया है और ब्रह्मा को तटस्थ रखा है पांचरात्र मत में भी उसी प्रकार शक्ति ही सृष्टि सम्पादन का कार्य करती है। ब्रह्मा में इस कार्य को सम्पादित न करने का दोष नहीं जाता, अपितु ब्रह्मा से अभिन्न शक्ति द्वारा सृष्टि कार्य होने से श्रुतियों के अनुकूल ब्रह्मा को कर्ता कहा जाना भी सार्थक हो जाता है।[34]

7वीं से 12वीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का क्रमशः पतन एवं शैव धर्म का उत्थान हुआ। शंकराचार्य ने योगियों को मद्यपान-रत कहकर उनकी उपेक्षा की है।[35] उत्तर मौर्य प्रकट काल तक शैव-भागवतों में एक समन्वित रूप के प्रतीक हैं। वास्तव में अवधूतों या सिद्धों की यह परम्परा वज्रयान, पांचरात्र, शैव तथा शाक्तों की समन्वित पद्धति को लेकर चली। कपिलयोग शाखा और दत्तयोग शाखा का समन्वय भागवत के निर्माण काल में ही हो चुका था। डॉ. विष्णुदत्त राकेश के मतानुसार[36] 788 ई. में काँची कामकोटिपीठ में अभिनव शंकर का अभिषेक हुआ तथा उन्होंने हिमालय की दत्त गुफा में निर्वाण प्राप्त किया। अतः कहा जा सकता है कि 7वीं शताब्दी तक दत्त सम्प्रदाय का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ था। नारद परिव्राजक उपनिषद् में अवधूत गोरख का उल्लेख है तथा उनसे रैवतक की गणना की गयी है।[37] ब्रह्माण्ड पुराण में शैव-भागवतों के आत्मीकरण की प्रक्रिया का फल दत्तात्रेय को बताया गया है। 'भिक्षुकोपनिषद्' की सूची में दत्तात्रेय अवधूत का जड़भरत के बाद परिगणित करना यह सूचित करता है कि दत्तात्रेय अवधूत परम्परा के सबसे सशक्त

व्यक्ति हैं और इनका प्रभाव शैव, शाक्त, वैष्णव तथा योगी सम्प्रदाय पर स्पष्टतः देखा जा सकता है।

दत्तात्रेय का उपाख्यान मार्कण्डेय पुराण के 18वें-19वें अध्याय में श्रीमद्भागवत् के 7वें स्कन्ध के 13वें अध्याय तथा 11वें स्कन्ध के 7वें, 8वें तथा 9वें अध्याय में वर्णित है। मार्कण्डेय पुराण में उनके शैव, शाक्त संस्कारों का संकेत है, तो भागवत में उनका वैष्णव संस्करण प्रस्तुत किया गया है।[38] डॉ. विष्णुदत्त राकेश[39] का मत है कि भागवत के चतुर्थ स्कन्ध तथा महाभारत के सभापर्व के 38वें अध्याय में दत्तात्रेयोपनिषद् अवधूतों की जिस चर्चा का उल्लेख करती है वह वातरसना मुनियों की चर्चा का ही विकसित रूप है। सांकृत और दत्तात्रेय संवाद के रूप में 225 श्लोकों की दत्तात्रेय संहिता में हठयोग की क्रियाएँ निरूपित हैं। गोरखनाथ की रचनाओं में भी दत्तात्रेय का उल्लेख अनेकशः आता है।[40] दुर्गागुरु पंक्ति के प्रथम खण्ड में दत्तात्रेय की गणना नवनाथों में की गयी है।[41]

'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' नामक ग्रन्थ के अनुसार दत्तात्रेय द्वारा गोरक्षनाथ व मत्स्येन्द्रनाथ को समरसतावादी सिद्धान्त का उपदेश दिये जाने से नाथ सम्प्रदाय पर दत्त प्रभाव की पुष्टि होती है।[42] महानिर्वाण तंत्र जैसे ग्रन्थ में अवधूत परम्परा को परिव्राजक कहा गया है।[43] नाथयोगी भी भ्रमणशील हुआ करते थे। ब्राह्मण होते हुए भी दत्तात्रेय को अतिवर्णभ्रमणी कहा गया है। गोरक्षनाथ ने भी अतिवर्णाश्रम धर्म को अंगीकार किया था। सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति के पंचमोपदेश में परपिण्ड, स्वपिण्ड तथा परमपद के समरसीकरण की प्रक्रिया दी गयी है। दत्तात्रेय भी गगन के माध्यम से इस सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। अवधूत की निन्दा तथा स्तुति से रहित होकर परम कल्याण की दृष्टि से उदासीन रहना चाहिए। यह मान्यता दोनों ही स्वीकार करते हैं।[44]

हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि गोरक्षनाथ से पहले दो प्रकार के पन्थ रहे होंगे- पहला जो योगमार्गी थे, किन्तु शैव या शाक्त नहीं थे। दूसरा जो शैवमार्गी थे, किन्तु योगमार्गी नहीं थे। उपरोक्त दोनों ही पन्थों के कई उपपन्थ या उपसम्प्रदाय जो पूर्ववर्ती थे, गोरक्षनाथ के संगठन में सम्मिलित हो गये और उनके प्रवर्तकों को गोरक्षनाथ का शिष्य समझा जाने लगा। इनमें से वाममार्गी शाक्त, बौद्ध, अघोर आदि सम्प्रदाय भी रहे होंगे।[45] औघड़ मत गोरखनाथ और दत्तात्रेय के बीच की कड़ी है। उनकी सैद्धान्तिक पीठिका कीनाराम की विचारधारा है। अवधूत परम्परा के प्रभाव से टेकमनराम तथा भिखमराम जैसे सन्तों की वाणियों में हठयोग की शब्दावली का प्रयोग मिलता है।[46]

सरभंग सम्प्रदाय अवभूत (अवधूत) या औघड़ परम्परा का ही एक रूप है। इसका निकटतम सम्बन्ध शैवमत की शाक्त तथा तान्त्रिक शाखाओं से है। डॉ. भरत सिंह उपाध्याय का मत है कि औघड़ प्राचीन कापालिकों का अवशिष्ट-रूपान्तरित मत है। यह नाथपन्थियों का ही दूसरा वर्ग है जो नाथ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण दीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं होते फिर भी अपने को नाथपन्थी स्वीकार कर गोरक्षनाथ के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं।[47]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वेद-वाह्य साधनाएँ नाथपंथ में योग के माध्यम से एकीकृत हुई है। देश के सभी सम्प्रदाय जब अपनी कर्मकाण्डीय मान्यताओं को वेद-पुराणादि द्वारा अनुमोदित करने, कर्मकाण्ड के माध्यम से अपने सम्प्रदाय को कसने, दूसरे से स्वयं को अलग सिद्ध करने, प्रचुर साहित्य रचनाओं द्वारा अपने सिद्धान्तों की मीमांसा और व्याख्या के साथ वर्णाश्रम की कड़ी को मजबूत बनाने में लगे थे, ठीक उसी समय नाथ सम्प्रदाय ने समन्वयवादी निर्गुण ब्रह्मवादी तथा हठयोग की सहज साधना के माध्यम से दिग्भ्रमित मानव समाज का पथ प्रकाशित और सुगम किया। नाथयोगियों ने प्रारम्भ से ही जाति-पाँति, ऊँच-नीच आदि के भेदभावों से रहित एक ऐसे समाज का सृजन किया जिसमें सभी विषमताएँ लुप्त हो गयीं तथा जनमानस द्वन्द्वों एवं विषादों से मुक्त हुआ। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों एवं विभिन्न भाषाओं में प्राप्त नाथपंथ से सम्बन्धित विवरण इस तथ्य के द्योतक हैं कि इस पंथ का वर्चस्व सम्पूर्ण राष्ट्र में था। नाथपंथ की व्यापकता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसमें शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध -तंत्र रसायन के साथ ही औपनिषदिक चिन्तन के तत्त्व भी विद्यमान हैं। कदाचित इसी आधार पर डॉ. मल्लिक का मत है कि नाथयोगियों का धर्म वस्तुतः उपनिषदों का ही धर्म है। इस सम्प्रदाय में जैनों का 'जत' नामक चूणान्त ब्रह्मचर्य, बौद्धों का विज्ञान एवं शून्यवाद तथा वज्रयान-तंत्र साधना का लय एवं कुण्डलिनी योग, सहजिया मत, कौलमत, हठयोग साधना का अपूर्व मिश्रण है। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में इस सम्प्रदाय की प्राचीनता सहज ही 6ठीं-7वीं शताब्दी ई.पू. तक रेखांकित की जा सकती है।[48] यद्यपि कि नाथ परम्परा में गुरु श्री गोरक्षनाथ को अनादि मानते हुए उन्हें शिव का अवतार माना गया है। नाथ साहित्यों यथा-महार्णव तन्त्र, वर्ण रत्नाकर, हठयोग प्रदीपिका तथा कौलावती तन्त्र आदि में भी गोरक्षनाथ को शिव का अवतार कहा गया है। इसके साथ ही साथ यह मत भी प्रचलित है कि त्रेतायुग में भगवान् श्रीरामचन्द्र ने उनसे योग-सम्बन्धी उपदेश व विद्या ग्रहण की थी। गुरु श्री गोरक्षनाथ महर्षि वेदव्यास व हनुमान के समान ही अमर हैं। एक अन्य पारम्परिक सिद्धान्त के अनुसार गोरक्षनाथ सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों ही युगों में विद्यमान रहकर सामाजिक उत्थान एवं जनकल्याण के कार्य में संलग्न रहते हैं। हर युग में उनका आविर्भाव होता है। नाथ योगी आज भी यह मानते हैं कि जिस दिन उन्हें नाथपंथ की दीक्षा दी जाती है, उस दिन गुरु गोरक्षनाथ उन्हें अवश्य दर्शन देते हैं।[49]

सन्दर्भः

1. महाभारत - अनुशासन पर्व - 54/9
2. "नाथृ नाधृ याञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु" - वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, पृ.196
3. ऋग्वेद : 10/130
4. सिद्धनाथ संहिता विवेक सागर, भाग-1, पृ.11
5. "बुद्धो दसवलो सत्था, सव्वन्च दियदुप्तमो

मुनिन्दो भगवानाथो, भक्खुयोअंगीरसोमुनि॥" (लंकावतार सूत्र-6:13)

6. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ, पृ. 281-85; डॉ. भगवती प्रसाद सिंह, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर, 1972
7. सिद्धनाथ संहिता विवेक सागर, भाग-1, पृ.119
8. नाथ और सन्त साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन; डॉ. नागेन्द्रनाथ, पृ.2 से 5; काशी हिन्दू वि.वि. वाराणसी, 1965
9. गोरखनाथ और उनका युग : रांगेय राघव, पृ. 9-10; आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6, 1963
10. राजगुरु योगिवंश - सुरेशचन्द्र नाथ मजूमदार, पृ.76; प्रकाशक- श्री प्रमथनाथ राणाघाट, 1351 (बंगाब्द)
11. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली, पृ. 32-33; डॉ. कल्याणी मल्लिक, कलकत्ता वि. वि., 1950
12. नाथ सम्प्रदाय, पृ. 9-10; डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तान एकेडमी, उ.प्र., इलाहाबाद, 1950
13. गोरख विशेषांक - वर्ष-2, जनवरी 1977, अंक-1, पृ. 221
14. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा - परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 56-57
15. "एकै बोधा: सर्वमिदं विभाति
एकवेदं विभूव सर्वम्।" (ऋग्वेद-8/58/2)
16. कठोपनिषद् - 2/3-11
17. श्रीसिद्धनाथ संहिता, पृ. 4
18. नाथलीला अमृत, पृ. 101
19. नाथ सम्प्रदायेतर इतिहास; डॉ. कल्याणी मल्लिक, पृ. 39
20. शैवमत - डॉ. यदुवंशी, पृ. 69-71
21. मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव; डॉ. कमला भण्डारी, पृ. 23-24
22. राजगुरु योगिवंश - सुरेशचन्द्र नाथ मजूमदार, पृ.56-57; प्रकाशक- श्री प्रमथनाथ राणाघाट, 1351 (बंगाब्द)
23. गोरक्षनाथ (नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में); डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ. 180
24. नाथ परम्परा और सन्त साहित्य - डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ. 68
25. नाथ सम्प्रदाय - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 67; हिन्दुस्तान एकेडमी, उ.प्र., इलाहाबाद, 1950
26. तत्रैव, पृ. 56-57
27. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, पृ. 14; संकलनकर्ता- गोपीनाथ कविराज, गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस-1925, सरस्वती भवन
28. गोरक्षनाथ (नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में); डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ. 180
29. गोरक्षनाथ और उनका युग, पृ. 68; आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6, 1963
30. मध्यकालीन हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि - डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ. 184-186
31. तत्रैव, पृ. 179-181
32. योगप्रवाह - पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ. 17; प्रकाशक- श्रीकाशी विद्यापीठ, बनारस, 2003

33. उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास - डॉ. विष्णुदत्त राकेश, पृ. 34
34. मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तान्त्रिक पृष्ठभूमि, पृ. 160-163
35. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली -डॉ. कल्याणी मल्लिक पृ. 40-42; कलकत्ता वि. वि. 1950
36. उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास - डॉ. विष्णुदत्त राकेश, पृ. 50-51
37. गोरखनाथ और उनका युग : रांगेय राघव, पृ. 9; आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6, 1963
38. गोरक्ष विशेषांक - वर्ष 2, जनवरी 1977, अंक-1, पृ. 169-170
39. उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास - डॉ. विष्णुदत्त राकेश, पृ. 22
40. तत्रैव, पृ. 20-25
41. गोरक्ष विशेषांक - वर्ष 2, जनवरी 1977, अंक-1, पृ. 170
42. उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास - डॉ. विष्णुदत्त राकेश, पृ. 52
43. महानिर्वाण तंत्र, पृ. 124, श्लोक-149
44. गोरक्ष विशेषांक - वर्ष 2, जनवरी 1977, अंक-1, पृ. 172-177
45. सिद्ध साहित्य - धर्मवीर भारती, पृ. 325; किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद-1955
46. उत्तर भारत के निर्गुण सन्त साहित्य का इतिहास, पृ. 45-49
47. बौद्ध तथा अन्य भारतीय दर्शन - भरतसिंह उपाध्याय, पृ. 68
48. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली -डॉ. कल्याणी मल्लिक पृ.191-193; कलकत्ता वि. वि. 1950
49. आदर्श योगी : अक्षयकुमार बनर्जी, पृ. 2, अनुवादक- रघुनाथ शुक्ल

नवनाथ एवं चौरासी सिद्ध

पद्मजा सिंह* एवं डॉ. अभिषेक सिंह**

हिन्दू धर्म-दर्शन, अध्यात्म और साधना के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों में नाथपन्थ का प्रमुख स्थान है। नाथपन्थ की सनातन जीवनधारा आदिकाल से प्रवहमान है। नाथपन्थ के सिद्धों ने अपनी चरण-रज, साधना और तत्त्वज्ञान की महिमा से भारतवर्ष की पावन-भूमि को दीप्यमान किया है।

'नाथ' शब्द अति प्राचीन है। नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में 'नाथ' शब्द के शाब्दिक और दार्शनिक अर्थ मिलते हैं। शक्तिसंगमतंत्र के अनुसार 'ना' का तात्पर्य उस नाथ ब्रह्म से है जो मोक्ष प्रदान करता है। 'थ' का अर्थ है- अज्ञान के सामर्थ्य को स्थगित करने वाला।[1] गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में एक स्थान पर यह भी उल्लिखित है कि सृष्टि स्थिति लय की प्रक्रिया में शक्ति विश्व का सृजन करती है, शिव उसका परिपालन करते हैं, काल उसका संहार करते हैं तथा नाथ मुक्ति देते हैं।[2] गोरखबानी में संगृहीत रचनाओं में 'नाथ' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है। भणिति में नाथ शब्द का प्रयोग जहाँ हुआ है वहाँ उसके रचयिता की ओर संकेत होता है; जैसे-

नाथ कहै तुम आपा राखौ।
नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू।[3]

अन्य स्थानों पर इस शब्द का प्रयोग ब्रह्म या परमतत्त्व के अर्थ में हुआ है; जैसे-

ते निश्चल सदा नाथ के संग।
नाथ कहता सब जग नाश्या।[4]

नाथ सम्प्रदाय से सम्बद्ध साहित्य में प्रयुक्त 'नाथ' शब्द के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'नाथ' शब्द के दो अर्थ हैं- परमतत्त्व या ब्रह्म, गुरु।

दूसरे शब्दों में 'नाथ' शब्द का प्रयोग उपाधि के रूप में भी किया गया है जो साधकों को नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद प्रदान की जाती है, और दीक्षा के बाद उनके नाम के अन्त

*असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
**असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

में 'नाथ' शब्द जोड़ दिया जाता है। बंगाल के योगी लोग भी अपने नाम के साथ 'नाथ' शब्द जोड़ते हैं।[5]

'नाथ' शब्द के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो नाथ को परमतत्त्व स्वीकार कर उनकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते थे, किन्तु डॉ. कल्याणी मल्लिक का कथन है कि नाथपन्थ या नाथ सम्प्रदाय नाम पुराना नहीं है। यह नाम अति आधुनिक है। नाथ सम्प्रदाय के और भी कई नाम प्रचलित हैं। ये नामकरण कभी तो सम्प्रदायगत वैशिष्ट्य को ध्यान में रखकर किये गये अथवा कभी उनकी साधना सम्बन्धी विशिष्टता के आधार पर किये गये हैं; जैसे- हठयोग की साधना करने के कारण उन्हें योगी कहा जाता है। इस शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत है, क्योंकि बहुत से ऐसे योगी हैं जो कनफटे नहीं हैं, उन साधकों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् नाथ शब्द (ब्रह्म) परमतत्त्व का बोधक शब्द है।

नाथ सिद्ध कौन थे? इन दो शब्दों पर विचार करते समय सर्वप्रथम चौरासी सिद्ध और नवनाथ पर ध्यान अवश्य जाता है। सिद्धों की संख्या केवल 84 ही क्यों रखी गयी? नवनाथों को 84 सिद्धों से अलग क्यों माना गया? ये प्रश्न निस्सन्देह मन को उद्वेलित करते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 84 सिद्धों का सम्बन्ध 84 लाख योनियों से है। नवनाथों के सम्बन्ध में भी अनेक अनुमान प्रचलित हैं। इन सिद्धों की सूचियाँ संख्या, काल और देश के प्रभाव से सीमित और भिन्न रूप में देखी जाती है। इनकी अनेक सूचियाँ मिलती हैं। कुछ सूचियों में मान्यताप्राप्त सिद्धों के नाम रखे गये हैं। इनकी सर्वाधिक प्रचलित संख्या 84 है।

सभी सूचियों में सभी सिद्धों के नाम समान रूप से नहीं मिलते। कुछ सूचियों में कहने के लिए उनकी संख्या 84 कह दी गयी है, किन्तु सिद्धों के नाम कम ही दिये गये हैं। उनके नाम के अन्त में 'पा' या 'पाद' या 'नाथ' उपाधि भी जोड़ दी गयी है और कुछ सिद्धों के नाम उपाधिहीन ही रहने दिये गये हैं। कुछ नामों के अन्त में 'भद्र' भी मिलता है। 'पा' अंश तिब्बती स्रोतों से प्राप्त सिद्धों के नामान्त में मिलता है। 'नाथ' उपाधि के आधार पर सम्प्रदाय का निर्णय करना कठिन है और भ्रान्ति भी उत्पन्न हो सकती है। यदि साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार किया जाय तो भारतीय साहित्य में इनके कई भेद मिलते हैं; जैसे- नाथसिद्ध, बौद्धसिद्ध, रससिद्ध, शैवसिद्ध, महेश्वरसिद्ध आदि। वास्तव में ये अनेक सम्प्रदायों की दृष्टि से विभाजित हैं, किन्तु जो सूचियाँ मिलती हैं उनमें अनेक प्रकार के सिद्धों के नाम 84 सिद्धों में ही गिन लिये गये हैं। किसी भी सूची को केवल बौद्धसिद्धों या नाथसिद्धों की सूची कहना दुष्कर है। इन सूचियों में अनेक सम्प्रदायों के सिद्धों के परस्पर विमिश्रित होने के कारण अनेक बताये गये हैं। कभी एक सिद्ध एक प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद जब दूसरी सिद्धि प्राप्त करने के लिए दूसरे गुरु से दीक्षा लेता है तो उसके साथ ही उसका पूर्वनाम भी परिवर्तित कर दिया जाता है, अथवा उस पूर्वनाम के अन्त की उपाधि में

परिवर्तन कर दिया जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ के भिन्न उपाधि संयुक्त नाम मत्स्यपा, गोरक्षपा, जालन्धरपा अथवा हाडिपा आदि मिलते हैं।

भारतीय साहित्य में सिद्धों के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलते हैं उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं। सिद्धों में परस्पर भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं; जैसे– गोरक्षनाथ, चर्पटीनाथ, कानिफानाथ आदि के नाथ सिद्ध होने से पूर्व उनमें कुछ पारस्परिक भिन्नताएँ थीं। मत्स्येन्द्रनाथ मूलतः कौल थे, जालन्धरनाथ कापालिक, चर्पटी का सम्बन्ध रसेश्वर सम्प्रदाय से रहा तो गोरक्षनाथ पाशुपतों के अधिक निकट प्रतीत होते हैं।[6] गोरक्षनाथ की आदर्श साधना पद्धति का समर्थन एवं अनुमोदन किसी न किसी रूप में अन्य सभी की ओर से एक समान होता चला आया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि गोरक्षनाथ से पहले दो प्रकार के दल रहे होंगे–

(1) एक जो योगमार्गी थे, किन्तु शैव या शाक्त नहीं थे।

(2) जो शैवागमवादी थे, पर योगमार्गी नहीं थे।

ये दोनों ही प्रकार के विभिन्न सम्प्रदाय जो पूर्ववर्ती थे, कालान्तर में गोरक्षनाथ के संगठन में सम्मिलित हो गये। इनके प्रवर्तकों को गोरक्षनाथ का शिष्य समझा जाने लगा। इनमें वाममार्गी, शाक्त, बौद्ध, अघोर आदि सम्प्रदाय भी थे। कुछ जैन तान्त्रिक सम्प्रदाय भी इसमें सम्मिलित हुए हैं। अवधूत सम्प्रदाय ने भी किसी समय गोरक्षनाथ का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। धर्मवीर भारती का मत है कि चौरासी की संख्या प्रत्येक तान्त्रिक सम्प्रदाय में प्रचलित थी। अनेक सम्प्रदाय इसकी पूर्ति हेतु विभिन्न शताब्दियों एवं प्रान्तों के सिद्ध पुरुष के नाम अपनी सूची में सम्मिलित कर लिया करते थे। बौद्ध एवं शैव दोनों प्रकार के सिद्ध तान्त्रिक पद्धतियों के अधिकाधिक निकट आ जाने पर तथा परस्पर आदान–प्रदान के कारण यह स्पष्ट रूप से कहना कठिन हो जाता है कि कब किस सम्प्रदाय ने किससे प्रभाव ग्रहण किया।[7] डॉ. बलदेव उपाध्याय का मत है कि– 84 सिद्धों की परम्परा किसी एक शताब्दी की नहीं है बल्कि इसमें 9वीं से 12वीं शताब्दी के मध्यभाग तक के सिद्धाचार्य समावेशित किये गये हैं।[8] डॉ. परशुराम चतुर्वेदी का अनुमान है कि 84 की संख्या सर्वप्रथम तिब्बत में एक साम्प्रदायिक रहस्य के रूप में उद्भूत हुई होगी। इन सिद्धों की चित्रावली भी तिब्बत में मिलती है, जिनकी वेश–भूषा, आकार–प्रकार के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि ये सिद्ध भिन्न–भिन्न स्थानों के रहे होंगे तथा इनकी साधना पद्धति में भी भिन्नता रही होगी। इन सिद्धों के अवतारवाद की भी सूचना मिलती है। एक ही सिद्ध के कई अवतार, नाम और सम्प्रदाय तक मिलते हैं।[9] चतुर्वेदी का मत है कि सिद्ध लोग जब दीक्षा ग्रहण करते थे तो वे भिन्न–भिन्न नामों से पुकारे जाने लगते थे। यह परम्परा आज भी तिब्बती मठों में प्रचलित है। चौरासी सिद्धों की सूचियों में प्रायः भिन्नता तथा उनके नामों में स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है। 14वीं शताब्दी के प्रथम चरण में कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर की रचना 'वर्णरत्नाकर' में नाथों एवं सिद्धों की सूची उद्धृत है, वहीं तिब्बती

ग्रन्थ तेंजूर से भी सहजयानी सिद्धों की सूची प्राप्त होती है[10], इस सूची में 84 सिद्धों के नाम कालक्रम से नहीं हैं न तो गुरु परम्परा का विशेष अनुगमन ही किया गया है। इन नाथ एवं सिद्धों की तालिका इस प्रकार है:[11]

क्र.सं.	नाथ सिद्ध	क्र.सं.	सहजयानी सिद्ध
1.	मीननाथ	1.	लूहिपा
2.	गोरखनाथ	2.	लोलापा
3.	चौरंगीनाथ	3.	विरूपा
4.	चामरीनाथ	4.	डोम्भीपा
5.	तांतपा	5.	शबरीपा
6.	हालिपा	6.	सरहपा
7.	केदारिपा	7.	फंकालीपा
8.	धोंगपा	8.	मीनपा
9.	दारिपा	9.	गोरक्षपा
10.	विरूपा	10.	चौरंगीपा
11.	कपाली	11.	वीणाप्पा
12.	कमारी	12.	शान्तिपा
13.	कान्ह	13.	तांतिपा
14.	कनखल	14.	चमरिपा
15.	मेखल	15.	खड्गपा
16.	उन्मन	16.	नागार्जुन
17.	फाण्डलि	17.	कराहपा
18.	धोबी	18.	कर्णरूपा (आर्यदेव)
19.	जालन्धर	19.	धगनपा
20.	टोंगी	20.	नारोपा
21.	मवह	21.	शालिपा (शीलपा)
22.	नागार्जुन	22.	तिलोपा
23.	दौली	23.	छत्रपा
24.	भिषाल	24.	भद्रपा

25.	अचिति	25.	दोखधिपा
26.	चम्पक	26.	अजोगिपा
27.	ढेण्टस	27.	कालपा
28.	भुम्बरी	28.	धोम्भिपा
29.	वाकलि	29.	कंकणपा
30.	तुजी	30.	कमरिपा (कंवलपा)
31.	चर्पटी	31.	डोगिपा
32.	भादे	32.	भदेपा
33.	चाँदन	33.	तंथेपा (तंतिपा)
34.	कामरी	34.	कुकुरिपा
35.	करवत	35.	कुचिपा
36.	धर्मपापतंग	36.	धर्मपा
37.	भद्र	37.	महीपा (महिलपा)
38.	पातलिभद्र	38.	अचिन्तिपा
39.	पालिहिह	39.	भलहपा (भवपा)
40.	भानु	40.	नलिनपा
41.	मीन	41.	भूसुकपा
42.	निर्दय	42.	इन्द्रभूति
43.	सवर	43.	मेकोपा
44.	साति	44.	कुण्डलिपा
45.	भर्तृहरि	45.	कमरिपा
46.	भीषण	46.	जालन्धरपा
47.	भटी	47.	राहुलपा
48.	गगनपा	48.	धर्मारिपा
49.	गमार	49.	धोकरिपा
50.	मेनुरा	50.	मेदनीपा (हालीपा)
51.	जीवन	51.	पंकजपा
52.	अधोसाधव	52.	घटापा (वज्रघण्टा)
53.	गिरिवर	53.	जोगीपा

54. सियारी
55. नागवालि
56. विभवत्
57. सारंग
58. विविकिधज
59. मगरधज
60. अचिति
61. विचित
62. नेचक
63. चाटल
64. नाचन
65. पाहिल
66. भीलो
67. पासल
68. कमल-कंगारि
69. चिपिल
70. गोविन्द
71. भीम
72. भैरव
73. भद्र
74. भभरी
75. मुरुकुटी

54. चेलुकपा
55. गुण्डरिपा (गोरूपा)
56. लुचिकपा
57. निर्गुणपा
58. जयानन्त
59. चर्पटीपा
60. चम्पकपा
61. भिखनपा
62. भतिपा
63. कुमरिया
64. चवरि (जवरि)
65. मणिभद्रा (योगिनी)
66. कनखलापा (योगिनी)
67. मैखलापा (योगिनी)
68. फलकलपा
69. कान्तालीपा
70. धहुली
71. अधुनिपा (अधुलि)
72. कपालपा (कमल)
73. किलपा
74. सागरपा
75. सर्वभक्षपा
76. नागबोधिपा
77. दारिकपा
78. पुतुलिपा
79. पनहपा
80. कोकालिपा
81. अनंगपा
82. लक्ष्मीकरा

83. समुदपा

84. भलि (व्यालि)पा

उपर्युक्त तालिका पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाथ सिद्धों की संख्या मात्र 75 है, पर लेखक ने अन्त में 'चउरासी सिद्धाः' का उल्लेख किया है। इनमें से पचास नाम ऐसे हैं जिनकी सूची (तिब्बती) ग्रन्थों में नहीं दिखाई पड़ते तथा शेष में से कई ऐसे हैं, जो थोड़े ही परिवर्तन के साथ उसमें आ चुके हैं।[12] हठयोग प्रदीपिका में 84 सिद्धों की सूची प्रस्तुत करने की बाध्यता नहीं है। केवल तत्कालीन हठयोग साधकों की सूची दी गयी है[13]–

1. आदिनाथ, 2. मत्स्येन्द्रनाथ, 3. शाबर, 4. आनन्द, 5. भैरव, 6. चौरंगी, 7. मीननाथ, 8. गोरक्षनाथ, 9. विरूपाक्षनाथ, 10. विलेशपनाथ, 11. मन्थान, 12. भैरव सिद्ध, 13. बुद्ध, 14. कन्थडि, 15. कोरंटक, 16. सुरानन्द, 17. सिद्धपाद, 18. चर्पटी, 19. कानेरी, 20. नित्यनाथ, 21. निरंजन, 22. कपालि, 23. विन्दुनाथ, 24. काकचन्द्रीश्वर, 25. अल्लामप्रभु, 26. देव, 27. घोड़ाचोली, 28. टिण्टिणि, 29. भानुकी, 30. नारदेव, 31, खण्ड, 32. कापालिक।

महाराष्ट्र में सत्यामलनाथ की परम्परा के श्रेष्ठ कवि शिवदीन केसरी के मठ में उपलब्ध 84 सिद्धों की एक सूची में 77 नामों का उल्लेख है। 'तत्त्वसार' नामक मराठी ग्रन्थ में 94 सिद्धों की सूची मिलती है।[14] इसके अतिरिक्त भी नाथ सिद्धों की काफी सूचियाँ हैं जो वस्तुतः भ्रम ही पैदा करती हैं, अतः उनका उल्लेख करना भ्रम को और भी बढ़ाना होगा।

नवनाथ की विभिन्न सूचियाँ–

जिस तरह 84 सिद्ध, 84 अंगुल की काया, 84 लाख योनि और 84 आसन; 9 ग्रह, 9 खण्डपृथ्वी, 9 नाग, 9 दुर्गा, 9 काण्यरस, 9 राजा प्रसिद्ध हैं, उसी तरह 'नवनाथ' भी प्रसिद्ध हैं। नवनाथों के विषय में पौराणिक ग्रन्थ से भी सूचना मिलती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार योगनाथ, आदिनाथ, मीननाथ, गोरक्षनाथ का नामोल्लेख है।[15] स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में नवनाथों का उल्लेख मिलता है[16]–

नवनाथाः समाख्यातास्तत्र श्री आदिनाथकः।
आदिनाथः कूर्माख्यो भवाख्यो गजनाथकः।।
सत्य संतोष नाथौ तु मत्स्येन्द्रो गोपिनाथकः।
गोरक्षो नवनाथास्ते नावब्रह्म रताः सदा।।

अग्निपुराण में नवनाथों की गणना इस प्रकार से की गयी है–

सिद्धाश्रम निवासी च विश्वामित्रादिभिः सह।

कौलीशनाथः श्रीकंठनाथो गगननाथकः॥

तूर्णनाथः शिवः कृष्णो भवस्ते नव नाथकाः॥

नाथ परम्परानुयायी लोग नवनाथ के रूप में जिन देवताओं का ध्यान करते हैं, उनके नाम हैं– (1) आदिनाथ (2) उदयनाथ (3) सत्यनाथ (4) सन्तोषनाथ (5) अचलनाथ (6) कन्यडिनाथ (7) चौरंगीनाथ (8) मत्स्येन्द्रनाथ (9) गोरक्षनाथ।[17] तेलुगु ग्रन्थ 'नवनाथ चरित्रम्' में नवनाथों का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है[18]– (1) शिवनाथ (2) मीननाथ (3) सारंगधर (4) गोरक्षनाथ (5) मेघनाथ (6) नागार्जुन (7) सिद्धबुद्ध (8) विरूपाक्ष (9) कणिक। पं. लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर ने सन्त ज्ञानेश्वर तक की गुरु–परम्परा 'ज्ञानेश्वरचरित्र' में निम्न प्रकार से बतायी है[18]–

आदिनाथ

↓

मत्स्येन्द्रनाथ ⟶ जालन्धरनाथ

↓

गोरक्षनाथ ⟶ चौरंगीनाथ ⟶ कानीफानाथ ⟶ मैनावती

↓

गहिनीनाथ

↓

निवृत्तिनाथ

↓

ज्ञाननाथ

स्वात्माराम विरचित 'हठयोग प्रदीपिका' में सिद्धों की एक सूची मिलती है जिसमें 33 नामों की गणना के बाद 'इत्यादयोमहासिद्धाः' कहकर छोड़ दिया गया है।[19] 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में नवनाथों के अन्तर्गत नागार्जुन, जड़भरत, सत्यनाथ, भीमनाथ, चर्पटनाथ, कन्थाधारी तथा जालन्धर की

गणना की गयी है।[20] सुधाकर चन्द्रिका में नवनाथों की सूची इस प्रकार की निर्धारित की गयी है–

(1) एकनाथ (2) आदिनाथ (3) मत्स्येन्द्रनाथ (4) उदयनाथ (5) दण्डनाथ (6) सत्यनाथ (7) सन्तोषनाथ (8) कूर्मनाथ (9) जालन्धरनाथ।[21]

आचार्य विनयमोहन शर्मा ने नाथ सम्प्रदाय की बहुमान्य परम्परा का उल्लेख किया है[22]–

आदिनाथ

↓

उमा ⟶ मत्स्येन्द्रनाथ ⟶ जालन्धरनाथ

↓

कानिखनाथ ⟶ मैनावती ⟶ गोपीचन्द

↓

गोरखनाथ ⟶ चर्पटीनाथ ⟶ रेवननाथ ⟶ चौरंगीनाथ

गहिनीनाथ ⟶ नागनाथ ⟶ भर्वनाथ ⟶ मणिकनाथ ⟶ विलेशयनाथ

↓

निवृत्तिनाथ

↓

ज्ञाननाथ ⟶ सोपानदेव ⟶ मुक्ताबाई

विसोवाखेचर ⟶ सत्यामलनाथ

↓

गैवीनाथ

↓

गुप्तनाथ

↓

उद्बोधनाथ

↓

केसरीनाथ ⟶ शिवदीन केसरी

डॉ. रांगेय राघव, डॉ. कल्याणी मल्लिक, पं. परशुराम चतुर्वेदी तथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विभिन्न विद्वानों द्वारा 30 से भी अधिक सूचियों का उल्लेख किया गया है। इन समस्त सूचियों का विवेचन करने के पश्चात् कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर दृष्टिपात किया जा सकता है; जैसे–

1. ये सूचियाँ विभिन्न क्षेत्रों में स्वीकृत नवनाथों की नामावली प्रस्तुत करती हैं।
2. इनमें से अनेक सूचियाँ ऐसी हैं जिन्हें विद्वानों ने यद्यपि एक ही स्रोत से प्राप्त किया है, लेकिन उन्हें उद्धृत करने में अनेक त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं। परिणामत: सूचियों की संख्या वृद्धि के साथ ही नाथों की संख्या में भी वृद्धि हो गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाथों के नाम में भी भ्रान्तियाँ हो गयी हैं।
3. इन सूचियों में सबसे अधिक मान्यता क्रमश: मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, आदिनाथ, जालन्धरनाथ, चर्पटीनाथ, चौरंगीनाथ, कानिफानाथ, भर्तृहरिनाथ एवं गोपीचन्द्रनाथ को मिली है।
4. इन सूचियों में नवनाथों के अनेक उपनाम, साधनात्मक नाम, लोककथात्मक नाम एवं पौराणिक नाम देखने को मिलते हैं। इनमें तांत्रिक नाथों के नामों का मिश्रण मिलता है।
5. इस भिन्नता एवं मिश्रण के कारण नाथों की संख्या में बहुत वृद्धि हो जाती है, और भिन्न-भिन्न सूचियों को नवनाथ सूची कहते हुए भी सब मिलाकर नवनाथों की संख्या लगभग 106 हो जाती है।

सभी सूचियों को मिलाकर क्रमशः अधिकाधिक सूचियों में आये सभी नाथों की सूची इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है-

आदिनाथः

आदिनाथ स्वयं शिव हैं। सिद्धसिद्धान्त पद्धति में नाथमत के प्रवर्तक आदिनाथ परम शिव स्वरूप का उल्लेख हुआ है। हठयोग प्रदीपिका में इन्हें 'सर्वेषां नाथानां प्रथम' कहा गया है। 'ज्ञानेश्वर चरित्र' में आदिनाथ, गोरक्षनाथ एवं जालन्धरनाथ के गुरु रूप में मान्य हैं। महावर्णतंत्र में नवनाथों की चर्चा करते हुए गोरक्ष, मत्स्येन्द्र, जालन्धर आदि के साथ आदिनाथ का नाम भी उल्लिखित है। गुजरात में बड़ौदा से 1मील दक्षिण-पूर्व में स्थित डमोई के किले में आदिनाथ की प्रस्तर-मूर्ति नाथसिद्धों के साथ उपलब्ध है। आदिनाथ की यह मूर्ति योगिराज के रूप में मिलती है। महाकाल संहिता[23] के रचयिता आदिनाथ अपना परिचय त्रिपुरारि-शिष्य के रूप में देते हैं, तथा अपने को शिव का ही अंश मानते हैं। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध में उल्लिखित है कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत थे। प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र और उनकी पत्नी पूर्वचिति के संयोग से उत्पन्न नौ पुत्रों में प्रथम नाभि थे। नाभि ने मेरुराज की कन्या मेरुदेवी से विवाह किया और पुत्र की प्राप्ति हेतु उन्हें हिमालय पर तपस्या करनी पड़ी थी। तपस्या के बाद (आदिनाथ) ऋषभदेव ने स्वयं अपने को उनके पुत्र के रूप में प्रकट किया। ऋषभदेव के पुत्र हरि, कवि, अन्तरिक्ष प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, दुर्मिल, चमस, और करभज हुए जो नवनाथ के रूप में 'योगिसाम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ में उल्लिखित है। आगम संहिता में कहा गया है कि ईश्वर से एकादश रुद्रों का उद्भव हुआ। उनमें से 10 तो ब्रह्मचारी रहे, पर एक रुद्र ने विवाह किया जिससे बिन्दुनाथ हुए। बिन्दुनाथ ने कश्यप ऋषि की कन्या से विवाह किया और उनके एक पुत्र आदिनाथ हुए। चन्द्रादित्य-परमागम में उल्लेख हुआ है कि सूर्यवंशी राजा सुधन्वा की कन्या सूर्यवती की आराधना से प्रसन्न होकर शिव ने वरदान दिया, जिससे एक पुत्र योगनाथ की प्राप्ति हुई। योगनाथ ने सुरति नाम की कन्या से विवाह किया। दोनों के संयोग से आदिनाथ हुए। आदिनाथ से मीननाथ, सत्यनाथ, सचेतनाथ आदि 16 पुत्र हुए, ये सभी योगी थे। सुरेशचन्द्र मजूमदार ने मत्स्येन्द्रनाथ कृत 'योगविषय' के आधार पर आदिनाथ का समय 522 ई.पू. होने का अनुमान किया है। मजूमदार का मत है कि यहाँ चटगाँव के पास 'महेशखाली' द्वीप में अति प्राचीन काल से आदिनाथ प्रतिष्ठित हैं। यह स्थान प्राचीन काल में नाथयोगियों के अधिकार में था। इस स्थान के पास ही महानाथ, चन्द्रनाथ, कपिलमुनि आदि आचार्यों की प्रतिष्ठा की गयी है। आदिनाथ का कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी है, यह कहना कठिन है पर नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत वे प्रारम्भ से ही शिव का अंश माने जाते रहे हैं। आदिनाथ (शिव) को अपना उपास्य देव मानकर नाथयोगियों ने जहाँ शैवधर्म को अपना उपजीव्य माना वहीं उसके विभिन्न रूपों- कापालिक, अघोर कालमुख आदि से पृथकता प्रदर्शित करते हुए नवीन सुसंयमित एवं सदाचार प्रधान मार्ग के आदिदेव के रूप में आदिनाथ

जैसे सार्थक नाम का निर्वचन किया। अनुश्रुतियों के अनुसार शिव ने 18 सम्प्रदाय चलाये, और गोरक्ष ने 12, दोनों को तोड़कर आज की बारहपन्थी शाखा बनी। इसमें 6 शिव तथा 6 गोरक्षनाथ की हैं। सभी के आदिगुरु शिव ही हैं। आदिनाथ शब्द न केवल अपनी चिरकालीन अलौकिक सत्ता का आभास कराता है, बल्कि नाथपन्थ से भी अपना सम्बन्धा जोड़ता हुआ प्रतीत होता है।

मत्स्येन्द्रनाथः

नाथपन्थ के संस्थापक आदिनाथ (शिव) माने जाते हैं पर व्यक्ति रूप में इस परम्परा के प्रथम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ के व्यक्तित्व को भी परवर्तीकाल में दिव्य और मानवी – दो दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया गया है। दिव्य रूप में उन्हें शिवावतार कहा गया है। उन्हें भगवती पुत्र कहकर सिद्धनाथ की संज्ञा दी जाती है।[24] कदलीमंजुनाथ माहात्म्य में कहा गया है कि अध्यात्मनिधि नामक ब्राह्मण दम्पति की आराधना से प्रसन्न होकर मंजुनाथ ने स्वयं को शिशु रूप में कमल–पुष्प पर अवतरित किया।[25] योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ[26] के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ किसी भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर पैदा हुए थे। गण्डान्त योग में पड़ने के कारण पिता द्वारा समुद्र में प्रक्षिप्त कर दिये गये। जब ये पानी में प्रवाहित किये गये तभी एक मछली इन्हें निगल गयी। जिस समय महादेव पार्वती को उपदेश दे रहे थे, उस समय वहाँ मछली तैर रही थी। मत्स्योदर में विद्यमान रहकर इन्होंने उस उपदेश को सुना। जब मछली मारी गयी तो उसके उदर से आप निकले, जिससे मत्स्येन्द्रनाथ कहलाये। जी.एस. घुरे महोदय ने भी स्वीकार किया है कि मत्स्येन्द्रनाथ नाम मत्स्य स्वामी होने के कारण पड़ा। व्यक्तिरूप में भी मत्स्येन्द्रनाथ जी के जन्म व कर्म के सम्बन्ध में विविध मत प्रचलित हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने इन्हें असम निवासी मछुआ जाति का होना बताया है।[27] कदली मंजुनाथ माहात्म्य के अनुसार वे दक्षिण के 'तुलु' भाषी राज्य के राजा थे तथा मंगला नामक उनकी कोई राजनगरी थी।[28] विद्वानों का मत है कि गोरक्षनाथ ने नेपाल में 12 वर्षों तक अनावृष्टि की स्थिति उत्पन्न करके वहाँ के लोगों को सद्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। उस अकाल के दौरान मत्स्येन्द्रनाथ को कपोतल पर्वत से बुलाकर नेपाल लाया गया था। इस पर्वत की स्थिति असम, दक्षिण भारत एवं सिंहल द्वीप में बतायी जाती है। इस पर्वत की स्थिति में मतभेद परिलक्षित होता है। डॉ. मोहन सिंह का अनुमान है कि संगलद्वीप वर्तमान स्यालकोट में है। उसी स्थान से होकर मत्स्येन्द्रनाथ नेपाल गये तथा शैव पाशुपत के वेश में उन्होंने शैवधर्म का प्रचार–प्रसार किया।[29] नेपाल में इनको अवलोकितेश्वर के नाम से जाना जाता है।

डॉ. प्रबोधचन्द्र ने मत्स्येन्द्रनाथ की संस्कृत रचनाओं का सम्पादन 'कौलज्ञान निर्णय' नामक ग्रन्थ के रूप में किया है। इसमें प्रयुक्त हस्तलेखों का समय भी 12वीं शताब्दी है। अब तक मत्स्येन्द्रनाथ कृत 'योग विषय' सहित 6 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं; जिनमें से 5 ग्रन्थों को प्रामाणिक माना जाता है जो निम्न हैं[30]–

(1) कौलज्ञान निर्णय – मच्छेन्द्रनाथ, मीनपाद।

(2) अकुलवीरतंत्र – 'अ' मीनपाद

(3) अकुलवीरतंत्र – 'ब' मच्छिन्दपाद

(4) कुलानन्द – मत्स्येन्द्र

(5) ज्ञानकारिका – मच्छिन्द्रनाथपाद

मत्स्येन्द्र के कौलज्ञाननिर्णय में सृष्टि, प्रलय, मानसलिंग का पूजन, निग्रह-अनुग्रह, जरा-मरण, अकुल से कुल की उत्पत्ति, चक्रध्यान, अद्वैतचर्या आदि अनेक विषयों पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

गोरक्षनाथः

गोरक्षनाथ की उत्पत्ति भी दो रूपों में देखी गयी है। व्यक्तित्व के रूप में गोरक्षनाथ शिवावतार हैं। 'हठयोग प्रदीपिका' में उल्लेख है कि आदिनाथ शिव ने योगमार्ग के प्रचारार्थ गोरख का रूप ग्रहण किया था। सर्वनिरपेक्ष, कालातीत होने के कारण वे सभी युगों और सभी कालों में विद्यमान रहते हैं। गोरक्षनाथ किस वंश के थे और किसके पुत्र थे, इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में इनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा या उनके आशीर्वाद का बड़ा हाथ रहा है। इनके उच्च संस्कारों और आचारों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ये द्विजाति वंश के थे। कुछ विद्वान मानते हैं कि गोरक्षनाथ का समय 5वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी के मध्य रखा जा सकता है। गोरक्षनाथ को कबीर (1440-1518 ई.), नानक (1469-1538 ई.), बाबा फरीद एवं मधुसूदन सरस्वती (लगभग 1700 ई.) से भी सम्बद्ध बताया गया है, जो उनके व्यापक एवं अपरिहार्य प्रभाव का द्योतक है।[31] उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न विद्वानों ने गोरक्षनाथ के समय के सम्बन्ध में एक लम्बी अवधि का संकेत दिया है। व्यक्ति के रूप में हजारों वर्षों तक किसी का भी जीवित रहना असम्भव है। ऐसी स्थिति में अनुमान लगाया जाता है कि गोरक्षनाथ नाम के एक व्यक्ति ने 8वीं, 9वीं शताब्दी अथवा इससे भी पूर्व बौद्ध विकृतियों के विरुद्ध संयमपूर्ण एवं शुद्धाचरण-प्रधान साधना को अपनाया होगा। इसी परम्परा में 10वीं से 11वीं शताब्दी के मध्य गोरक्ष के किसी अन्य गोरक्षनामधारी व्यक्तित्व ने युगानुकूल एक विशाल धार्मिक व सांस्कृतिक संगठन किया। आदिगोरक्ष एक उत्कृष्ट कोटि के साधक थे, तो परवर्ती गोरक्ष एक सफल संगठनकर्ता। उन्होंने योग विषयक उपदेश मौखिक रूप से ही तत्कालीन जनभाषा में दिये जो लोकविश्रुत होकर कुछ विशिष्ट जनों तक सीमित क्षेत्र तक सुरक्षित रह सके। अनुकूल अवसर प्राप्त कर बौद्धों के पतन युग में ये उपदेश प्रकाश में आ सके।

जालन्धरनाथ:

नवनाथों की ज्योतिष्क मण्डली को सुशोभित करने वाले योगिराज जालन्धरनाथ ब्रह्मज्ञान में रमण करने वाले अप्रतिम नाथसिद्ध थे। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में नवनाथों के विन्यास के क्रम में 'जालन्धरो वसेन्नित्यमुत्तरा-पथमाश्रित:' कहकर इनका सादर स्मरण किया गया है।

तिब्बती ग्रन्थों में जालन्धर की विशिष्ट ख्याति है। इनके जालन्धीपाव, जालन्धरीपाव नाम भी मिलते हैं। इन्हें कान्हुपा एवं तांतिपा का गुरु बताया गया है। जालन्धर ब्राह्मण कुलोत्पन्न बताये जाते हैं, जो कालान्तर में एक पण्डित भिक्षु बने।[32] योगिसाम्प्रदायविष्कृति ग्रन्थ में जालन्धर को ज्वालेन्द्र नाम से जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति है कि हस्तिनापुर नरेश वृहद्रथ ने सन्तानोत्पत्ति की कामना से यज्ञ सम्पन्न कराया था। अग्निदेव की प्रसन्नता के फलस्वरूप एक बालक प्रादुर्भूत हुआ जिसने मत्स्येन्द्रनाथ की प्रेरणा से शिव का शिष्यत्व ग्रहण किया। ज्वाला (अग्नि) से उद्भूत होने के कारण उसे ज्वालेन्द्रनाथ के नाम से भी सम्बोधित किया गया।[33] गौड़ बंगाल के शासक माणिक चन्द्र एवं उनकी रानी मयनावती तथा उसके पुत्र गोपीचन्द से जालन्धर जी का सम्बन्ध बताया जाता है। तिब्बती ग्रन्थ में उल्लिखित है कि बंगीय राजा गोपीचन्द ने सिद्ध बालपाद (जालन्धरपाद) को जीवित जमीन में गाड़ दिया था। कानफा (कृष्णपाद) ने अपने गुरु का उद्धार किया।[34] डॉ द्विवेदी का मत है कि जालन्धर ने उड्डीयान में रहकर बौद्ध-दीक्षा ली थी।[35] जालन्ध एवं उड्डीयान की स्थिति पास में ही है। जालन्धर पीठ किसी समय वज्रयानी साधना का केन्द्र था। कहा जाता है कि सती के मृत शरीर का एक भाग जालन्धर पीठ में ही गिरा था। यह स्थान त्रिगर्त प्रदेश में है जो पंजाब के अन्तर्गत पड़ता है। जालन्धर पीठ की देवी त्रिपुरा कहलाती है। उड्डीयान पीठ के दो भाग सम्भल और लंकापुरी के राजा इन्द्रभूति एवं ज्वालेन्द्र बताये जाते हैं।[36] जालन्धर पीठ त्रिगर्त (पंजाब) तथा उड्डीयान पीठ (उड़ीसा या असम) में स्थित था। डॉ. विष्णुदत्त का अनुमान है कि जालन्धरण का सम्बन्ध त्रिगर्त पीठ से और कानिफा का सम्बन्ध उड्डीयान पीठ से रहा होगा। गुरु-शिष्य सम्बन्ध होने के कारण जालन्धरनाथ का सम्बन्ध दोनों पीठों से मान लिया गया है।[37] महातंत्रपर्व में नवनाथों के निवास स्थान का संकेत देते हुए जालन्धरनाथ को ज्वालामुखी क्षेत्र उत्तरापथ का निवासी होना कहा गया है। स्कन्दपुराण काशीखण्ड के एक श्लोक से इस मत की पुष्टि होती है कि जालन्धरनाथ उत्तर भारत के पंजाब प्रदेश में निवास कर योगमार्ग का प्रचार कर रहे थे।

तिब्बती ग्रन्थ तेंजूर से जालन्धरनाथ की 7 कृतियों का उल्लेख मिलता है जिनमें से दो प्रमुख ग्रन्थों को (विमुक्तमंजरी गीत और हूँकारचित्तबिन्दु भावनाकृम) राहुल जी ने मगही भाषा में लिखित बताया है। इसके अतिरिक्त जालन्धरनाथ कृत ग्रन्थों में शुद्धिवज्रपदीप, सिद्धान्तवाक्य (14 श्लोकों की रचना), जालन्धीपाव जी सबदी नामक शीर्षक में 13 सबदियाँ संगृहीत हैं। इन सबदियों में सदाचार पर बल दिया गया है, तथा कर्मानुसार फल की प्राप्ति बतायी गयी है।

कृष्णपादः

योगिराज कान्हिपानाथ को कृष्णपाद, कण्हपा, कान्हूपा, कानपा, कणेरीपाव के नाम से भी जाना जाता है। ये जालन्धरनाथ के शिष्य तथा गोरखनाथ के समसामयिक थे। योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ में इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के अनियन्त्रित वीर्य से बतायी गयी है। कणेरी का असली (मूल) नाम आर्यदेव बताया जाता है। तिब्बती ग्रन्थों में वर्णित सूचनाओं के आधार पर राहुल सांकृत्यायन इन्हें कर्णाट देशीय ब्राह्मण मानते हैं। देवपाल के समय (809-849 ई.) में ये एक पण्डित भिक्षु थे और कितने ही दिनों तक सोमपुरी बिहार में निवास कर विद्याध्ययन और योग साधना की थी। यह बिहार, बंगाल के राजशाही जनपद के पहाड़पुर स्थान में स्थित बताया गया है। परन्तु डॉ. भट्टाचार्य ने इन्हें जुलाहा जाति में उत्पन्न तथा उड़ियाभाषी माना है।[38] डॉ. बड़थ्वाल ने कणेरी को नागार्जुन का शिष्य बताया है। अपने तथ्य की पुष्टि हेतु उन्होंने काणेरी की सर्वांगी में संग्रहित निम्न सबदी पर आधारित एक पद का उल्लेख किया है-

"पूछे कणेरी नागा अरजन, प्यंड छाड़ि प्राण कहा समाई।"

महाराजा मानसिंह कृत 'श्रीनाथतीर्थावली' के अनुसार कृष्णपाद ने कलशाचल पर्वत पर तपस्या की थी। वर्तमान समय में सँपेरे लोग अपनी गुरु परम्परा कानिफनाथ से ही मानते हैं। योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ में एक कथा है कि गोरक्षनाथ ने एक विशाल भण्डारे का आयोजन किया था। उनके आदेश के अनुसार वहाँ उपस्थित जनों ने मनोवांछित भोजन प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की। कृष्णपाद के एक शिष्य ने गोरक्षनाथ की परीक्षा लेने के विचार से एक सर्प की ही कामना की। उसके सामने एक काला सर्प ही उपस्थित हुआ। उपस्थित जन-समूह के भोजन करने में बाधा पहुँची। अतः उसे दण्ड के रूप में गोरक्ष ने उस सर्प को ही उस शिष्य की जीविका का माध्यम बता एक निश्चित अवधि तक के लिए योगी समाज से बहिष्कृत कर दिया था। कृष्णपाद के अनुयायी जन सर्प को अपनी जीविका का साधन बनाकर आज भी समाज में दिखाई पड़ते हैं।

कृष्णपाद ने अपनी प्रारम्भिक साधना में मन पर विजय प्राप्त करने पर विशेष बल दिया है।[39] कृष्णपाद ने हे बज्र तंत्र पर एक टीका 'योग रत्नमाला' अथवा हे बज्रपंजिका लिखी थी, जिससे हे बज्र-साधना के प्रति उनकी निष्ठा का पता चलता है।

चौरंगीनाथः

तिब्बती ग्रन्थों में वर्णित सूचनाओं के आधार पर चौरंगीनाथ देवपाल के पुत्र बताये जाते हैं। देवपाल के पुत्र अथवा पौत्र में से किसी ने शासन नहीं किया, इसका कारण चौरंगी का राजत्याग भी हो सकता है। हरिप्रसाद शास्त्री का मत है कि देवपाल की भगिनी मयना ने धर्म पूजा के प्रतिष्ठाता पं. रमाई को उत्साहित किया था। शून्यपुराण में आदिनाथ, मीननाथ, सिंगा, चारंगेनाथ, दण्डपानि और

किन्नरी का उल्लेख है। पिण्डी के जैन ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध 'प्राणसंकली' नामक हिन्दी रचना चौरंगीनाथ की बतायी जाती है। इस ग्रन्थ के अनुसार चौरंगीनाथ सुलेमान (शालिवाहन) के पुत्र थे, परन्तु शालिवाहन ने अपनी पत्नी के कुचक्र में पड़कर अपने पुत्र के हाथ-पाँव कटवा दिये थे। मत्स्येन्द्रनाथ के अनुग्रह से इनका उद्धार हुआ और चौरंगीनाथ को योगबल से पूर्ण बना दिया गया। चारों अंग पूर्ण होने से वे चौरंगीनाथ कहलाये और नाथ सम्प्रदाय में उन्हें दीक्षित कर दिया गया। डॉ. द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'नाथ सम्प्रदाय' में शालिवाहन को स्यालकोट (पंजाब) का राजा स्वीकार किया है। राहुल जी के मतानुसार वे मगध के निवासी थे। एक प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार बिहार स्थित जिला शाहाबाद के चनपुर गाँव में शालिवाहन का प्राचीन खण्डहर है, जिसके सिंहद्वार पर राज्य के पुरोहित हरसू ब्रह्म का प्रसिद्ध मन्दिर है। कदली मंजुनाथ माहात्म्य के 24वें अध्याय में उल्लेख है कि चौरंगीनाथ पुष्पपुर नामक नगर के राजा महाबल के पुत्र थे। वंशधर की चालबाजी ने उन्हें अपने पिता द्वारा हस्त-पाद रहित होना पड़ा था। चौरंगीनाथ ने गंगदत्त नामक एक ब्राह्मण को गंगनाथ बनाया था। जिस देवबाला जोहड़ तालाब के किनारे उन्होंने गंगनाथ को दीक्षा दी थी, वहाँ चौरंगीनाथ की एक धूनी है।[40] योगी परम्परा में चौरंगीनाथ पूरन भक्त के नाम से जाने जाते हैं। तिब्बती ग्रन्थ स्तनगयुर में चौरंगीनाथ का एक हिन्दी ग्रन्थ 'वायुतत्वभावनोपदेश' तथा अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में उनकी चार छोटी-छोटी सबदियाँ मिलती हैं।[41]

चर्पटीनाथः

नाथ सम्प्रदाय के नवनाथों में से एक चर्पटीनाथ योगाचार्य एवं रससिद्ध महात्मा के रूप में स्वीकृत हैं, उन्होंने अपनी योगसाधना में आत्म-साक्षात्कार को प्राथमिकता दी है। शाबरतंत्र में कापालिकों के बारह आचार्यों और उनके प्रधान शिष्यों में से एक चर्पटीनाथ का उल्लेख भी मिलता है। मराठी परम्परा में चर्पट को गोरक्षनाथ का शिष्य एवं उनके समकालीन गहिनीनाथ का गुरुभाई माना गया है। गोरक्षशतक में इन्हें मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्य बताया गया है। योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ के अनुसार चर्पटी की उत्पत्ति ब्रह्मा के अनियन्त्रित वीर्य के रेत में स्थापित करने से हुई। रेत में उत्पन्न वह बालक एक वेदपाठी ब्राह्मण दम्पति सत्यशर्मा और चन्द्रिका द्वारा पालित हुआ।

प्रायः विद्वानों का मत है कि चर्पटनाथ का जन्म हिमाचल प्रदेश के चम्बानगर में हुआ था। चम्बानगर में चर्पटीनाथ का एक मन्दिर है। चम्बा नरेश साहिलदेव इन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। चम्बाराज्य की वंशावली में इनका उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि चर्पटीनाथ की कृपा से साहिलदेव को सन्तान की प्राप्ति हुई थी। साहिलदेव के उत्तराधिकारी आसट का उल्लेख कल्हण ने अपनी पुस्तक राजतरंगिणी में किया है। कल्हण के मत से उनका आगमन संवत् 1144 वि. में कश्मीर में हुआ था। चम्बा राज्य की वंशावली साहिल और आसट के बीच सात राजाओं की विद्यमानता का समर्थन करती है। इस दृष्टि से साहिलदेव 200 वर्ष पहले विद्यमान थे। सम्भवतः रांगेय राघव जी ने

इसी आधार पर चर्पटीनाथ का समय लगभग 920 ई. से से कुछ पूर्व होने की सम्भावना व्यक्त की है।[42] चर्पटीनाथ स्वत:सिद्ध पुरुष थे, सांसारिक माया-मोह, राग-विराग से दूर थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन को योग साधना का आधार कहा है। चर्पटीनाथ के शिष्यों में राघवनाथ, बालनाथ, तोटकनाथ, नित्यनाथ, जाम्बुनाथ, काकुत्सनाथ एवं भैरवनाथ आदि सिद्धों की गणना की जाती है।[43]

भर्तृहरिः

परम्परा और अनुश्रुतियों में एक नाथ 'भर्तृहरि' का उल्लेख प्रचुरता से मिलता है। भर्तृहरि के नाम से प्रसिद्ध दो सिद्ध पुरुष हो चुके हैं- एक संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध भर्तृहरि तो दूसरे नाथपन्थीय परम्परा में परिगणित राजा भर्तृहरि (भरथरी)। नाथ भर्तृहरि की वैराग्यपरक कहानी 'वैराग्यशतक' में उल्लिखित है। उनके लिए एक श्लोक प्रचलित है-

"महान्तः कवयः सन्तु महान्तः पण्डितास्तथा।
महाकविर्महाविद्वाने को भर्तृहरिर्मतः॥"

नाथ सम्प्रदाय में भरथरी (भर्तृहरि) को वैराग्य पन्थ का प्रवर्तक माना जाता है। डॉ. विष्णुदत्त राकेश ने भर्तृहरि को 11वीं शताब्दी के मध्यभाग में विद्यमान माना है। गोपीचन्द इन्हीं भर्तृहरि की बहन मैनावती के पुत्र थे।[44] कहा जाता है कि भर्तृहरि जी उज्जयिनी नरेश गन्धर्वसेन के पुत्र थे। गन्धर्वसेन का विवाह ताम्रसेन की कन्या महेन्द्रलेखा से हुआ था। महेन्द्रलेखा से विक्रम नामक पुत्र हुआ तथा गन्धर्वसेन और मालिनी नाम की एक दासी से संयोग से भर्तृहरि की उत्पत्ति हुई।[45] ब्रिग्स ने माना है कि 1076 से 1120 ई. तक एक विक्रमादित्य उज्जयिनी में राज्य करता रहा। भर्तृहरि के विरक्त होने पर विक्रमादित्य ही सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। 'भर्तृहरि निर्वेद' नाटक में गोरक्षनाथ को भर्तृहरि का गुरु बताया गया है। गाजीपुर जनपद में भित्तरी ग्राम को भर्तृहरि की तपोभूमि बताया जाता है। कहा जाता है कि पंजाब के सरगोधा जिले में 'सिद्धकरना' पहाड़ी पर उन्होंने समाधि ली थी। चुनार के किले में भर्तृहरि जी की समाधि है। वहाँ अंग्रेजी भाषा में लिखित एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य ने 56 वर्ष में चुनार के किले का निर्माण कराया था। वर्तमान समय में इस किले के आधे भाग पर भारत सरकार का नियन्त्रण है तथा शेष आधा भाग वहाँ के महन्त के अधिकार क्षेत्र में है। यहाँ के महन्त भर्तृहरि के नाम से जाने जाते हैं।

गोपीचन्दनाथः

गोरखपन्थ के माननाथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं गोपीयन्त्र (सारंगी) के आविष्कर्ता गोपीचन्द बंगाल के पालवंशीय शासक मानिकचन्द तथा भर्तृहरि की बहन मैनावती के पुत्र थे। इनके पिता पश्चिम बंगाल के रंगपुर जिले के शासक थे। इनका राज्य विस्तार सिंहलद्वीप तक फैला हुआ था। बंगला भाषा में लिखित पुस्तक 'गोविन्दचन्द्रेरगान' में गोविन्दचन्द्र का किसी दक्षिण के राजा से युद्ध

होना वर्णित है। राजेन्द्र चोल (1063–1112 ई.) इस समय राजा हुआ। अतः गोविन्दचन्द्र को 11वीं शताब्दी के मध्य भाग में विद्यमान माना जा सकता है।[46] गौड़ देश के इतिहास में उल्लिखित है कि गोविन्दचन्द्र राजा महीपाल (978–1030 ई.) के समकालीन थे। सुकूर मुहम्मद द्वारा लिखित 'गोविन्दचन्द्र के संन्यास' में उल्लेख है कि राजा माणिकचन्द्र ही गोविन्दचन्द्र के पिता थे। डॉ. मल्लिक का मत है कि पाल राजाओं के पतन युग में ही उनकी कीर्ति का यशोगान करने वाली योगी जाति भारत में गोपीचन्द के गीतों को गाकर भिक्षार्जन किया करती थी। भट्टशाली द्वारा रचित 'मयनामति के गीत' से यह संकेत मिलता है कि दक्षिण के राजा राजेन्द्रचोल ने अपनी कन्या को गोविन्दचन्द्र की रानी के रूप में अर्पित कर सन्धि कर ली थी। डॉ. रांगेय राघव का मत है कि 1027 ई. में पिता के देहावसान हो जाने पर गोपीचन्द भोग में आसक्त हो गये थे। माँ मयनामति की प्रेरणा से उन्होंने जालन्धरनाथ से दीक्षा ली। माता के उपदेश से प्रभावित उन्होंने अपनी दो रानियों – अडुना और पडुना का त्याग कर वैराग्य धारण किया था।[47] इनकी अनेक गाथाएँ राजस्थान में रची गयी हैं। इसी क्रम में 'गोपीचन्द भरथरी' पुस्तक (प्राच्य शोध विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर) राजस्थानी भाषा में लिखी गयी है। इस पुस्तक के 8 विश्रामों में गोपीचन्द की वैराग्य विषयक कथ निबद्ध की गयी है।

गहिनीनाथः

महाराष्ट्र में नाथ परम्परा को प्रतिष्ठित करने वाले अग्रदूत गहिनीनाथ हैं। गहिनीनाथ ने महाराष्ट्र के नाथमत को कृष्णभक्ति से जोड़ दिया और यही परम्परा सन्त ज्ञानेश्वर आदि विट्ठल भक्त कवियों के द्वारा मराठी भक्ति साहित्य में हरिहर एक्य के नाम से स्थापित हुई।

गोरक्षनाथ के दो प्रसिद्ध शिष्य (मराठी) बताये जाते हैं– ग्रहणनाथ (गहिनीनाथ) और अमरनाथ। गहिनीनाथ का जन्म 1175 ई. के आस–पास महाराष्ट्र में हुआ था।[48] मराठी पुराण ग्रन्थ 'नवनाथ भक्तिसार' से गहिनीनाथ के सम्बन्ध में अद्भुत कथाएँ ज्ञात होती हैं। चिन्तामणि नाथ के ग्रन्थ ज्ञान 'कैवल्य' में उल्लेख है कि त्रियाराज्य की रानी परिमला के मोहपाश में आबद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के उद्धार हेतु उनके शिष्य गोरक्षनाथ को वहाँ जाना पड़ा था। मत्स्येन्द्रनाथ के संयोग से उत्पन्न परिमला के पुत्र को गोरक्षनाथ ने समाप्त कर दिया। पुनः अपनी काया से सौ पुत्रों की सृष्टि करा दी। उन्होंने परिमला को यथार्थ ज्ञान का बोध कराया तथा उनके निवेदन पर उनके पहले पुत्र को जीवित कर दिया। वह पहला पुत्र ही गहिनीनाथ नाम से प्रसिद्ध हुआ।[49] गहिनीनाथ की गुफा नासिक त्रयम्बकेश्वर के निकट ब्रह्मगिरि में विद्यमान है। वहीं पर उन्होंने अपने शिष्य निवृत्तिनाथ को परमार्थ बोध कराया। यहाँ आज भी नाथ योगियों का निवास है। अहमदनगर के जामखण्ड तहसील में चिंचोली नामक ग्राम में गहिनीनाथ का अति प्राचीन मन्दिर था। यादव कालीन हेमाद्रि पण्डित के नाम से प्रसिद्ध हेमाडपन्ती पद्धति से निर्मित यह मन्दिर 17वीं सदी में औरंगजेब द्वारा गिरा दिया गया था। ग्रामवासियों की सहायता से लामानराव फत्तेजंग ने इसे पुनः बनवाया। इस मन्दिर में प्राप्त शिलालेख

महत्वपूर्ण है जिसमें निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं-

"श्री गैबी वीर देवल बांधले

लमानराव सहानवे फतेजंग वादर

मोकदम मौजे चिंचौली चकले

बाटवदे मामले बिड सके 1619

वीस्वर नाम संबद्दरे जेष्ठ सध त्रयौदसी॥"

गहिनीनाथ की मराठी पुस्तक 'गोरक्षगीता' भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उक्त पुस्तक में गहिनीनाथ द्वारा कठोर साधना, आत्मज्ञान, कर्म, योग का मार्मिक विवेचन किया गया है।

निवृत्तिनाथः

महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानेश्वर महाराज का चरित्र सर्वश्रुत है। उनकी भगिनी मुक्ताबाई और उनके बंधु निवृत्तिनाथ और सोपानदेव सभी आध्यात्मिक दृष्टि से महान् थे। निवृत्तिनाथ का जन्म शक सं. 1195 में पैठण से चार कोस दूर गोदावरी के उत्तर तरफ 'आपे' गाँव में हुआ था। उनके पिता श्रीविट्ठलपन्त जी ने अपनी पत्नी रखुमाई की सम्मति बिना ही संन्यासधर्म की दीक्षा ली थी। यह बात जानते ही उनके दीक्षागुरु श्रीपादस्वामी की आज्ञानुसार उन्हें वापस गृहस्थ जीवन अपनाना पड़ा था। उनके तीन पुत्र- निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और एक पुत्री मुक्ताबाई थी। इन बालकों का जीवन संघर्षमय ढंग से व्यतीत हुआ। समाज ने भी उनकी उपेक्षा की। लगभग 9-10 वर्ष की आयु में निवृत्तिनाथ ने गहिनीनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया।[50] निवृत्तिनाथ को अपने छोटे भाई ज्ञानेश्वर पर अगाध स्नेह था। सम्भवत: इसीलिए ज्ञानेश्वर के समाधि ग्रहण के दो माह पश्चात ही निवृत्तिनाथ ने भी समाधि ले ली थी। निवृत्तिनाथ की मराठी रचनाएँ 'निवृत्तिनाथचि अभंग' नाम से प्रकाशित हैं। उनमें नाथ दर्शन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

ज्ञाननाथ (सन्त ज्ञानेश्वर):

महाराष्ट्र के नाथपन्थीय कवि सन्त ज्ञानेश्वर निवृत्तिनाथ के छोटे भाई का जन्म सन् 1275 ई. में हुआ था। इनके माता-पिता धर्म मर्यादा की रक्षा के लिए त्रिवेणी संगम में अपने शरीर को छोड़कर परलोक चले गये। इस प्रकार बाह्यत: अनाथों जैसी अवस्था में ही नाथों के द्वारा सकल लोकनाथ का कार्य करने के लिए उन्हीं के अंश से आये हुए उन्हीं के स्वरूप थे। ये मातृ-पितृविहीन बालक भिक्षा माँगकर अपना जीवन निर्वाह करते हुए सदा भगवद्‌भजन, कीर्तन, भगवच्चर्चा में ही अपना समय व्यतीत करते थे। 15 वर्ष की आयु में ही उन्होंने ज्ञानेश्वरी टीका पूरी की थी। सन्त ज्ञानेश्वर ने अपनी मण्डली के साथ प्रयाग, वाराणसी, द्वारका एवं गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करने

के पश्चात पण्ढरपुर में सन्त नामदेव के द्वारा आयोजित विशाल उत्सव में भाग लिया था। इस उत्सव में सम्मिलित होकर ज्ञानेश्वर आलन्दी चले गये। ज्ञानेश्वर जी ने अपने ज्ञान से जगत् को आलोकित करते हुए 22 वर्ष की अल्पावस्था में संवत् 1353 में आलन्दी ग्राम में जीवित समाधि ले ली और उनकी समाधि के पश्चात सोपानदेव, मुक्ताबाई और निवृत्तिनाथ भी एक-एक करके इस लोक से चले गये।

नाथ सम्प्रदाय में अनेक ऐसे सिद्धों की चर्चा की जाती है, जिनके विषय में हमारे पास विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती। कुछ ऐसे सिद्धों के सम्बन्ध में चर्चाएँ सन्दर्भ ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं, परन्तु उनके समय और स्थान के सम्बन्ध में भी अत्यधिक मतभेद दिखाई पड़ता है। कुछ ऐसे सिद्ध पुरुषों पर प्रकाश डाला जा सकता है, जो निम्न हैं-

नागनाथ (नागार्जुन):

गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में नागार्जुन का नाम बारहपन्थ प्रवर्तकों में आया है। नागार्जुन नामक एक व्यक्ति 6वीं शताब्दी में विद्यमान बताये जाते हैं। ये नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। इनका माध्यमिक शास्त्र उपलब्ध होता है। मेरुतुंग के जैन (प्रबन्ध चिन्तामणि) ग्रन्थ में एक कथा मिलती है कि टंक नामक पर्वत पर निवास करने वाले एक राजपूत रणसिंह की पुत्री भूपलदेवी और वासुकी नाग के संयोग से नागार्जुन का जन्म हुआ। वासुकी ने अपने पुत्र को समस्त औषधियों का ज्ञान कराया जिससे नागार्जुन को महासिद्धि प्राप्त हो गयी। बागभट्ट के 'रसरत्न समुच्चय' एवं 'वर्ण रत्नाकर' के नवनाथ चौरासी सिद्धों की तालिका में इनका नाम आता है। साधनमाला में ये कई साधनाओं के प्रवर्तक माने जाते हैं। द्विवेदी जी का मत है कि नाथसिद्ध नागार्जुन गोरखनाथ के थोड़े ही बाद हुए थे। 12वीं शताब्दी में भी नागनाथ नामधारी एक अन्य सिद्ध हुए थे, कभी-कभी नागार्जुन और नागनाथ को एक ही मान लिया गया है। इस प्रकार नागार्जुन नामधारी तीन व्यक्तियों- महायानी नागार्जुन, पारसनाथी शाखा के प्रवर्तक नागार्जुन (नाथसिद्ध) एवं परवर्ती सिद्ध नागनाथ (12वीं शताब्दी) के विषय में पता चलता है। जोधपुर से उपलब्ध 'कक्षपुट' नामक एक ग्रन्थ नागार्जुन सिद्ध के नाम से मिलता है।

चुणकरनाथः

डॉ. बड़थ्वाल ने इन्हें गोरक्षनाथ का समसामयिक और चर्पटनाथ का पूर्ववर्ती सिद्ध स्वीकार किया है। जोधपुर दुर्ग स्थित पुस्तकालय में चार श्लोकों की एक हस्तलिखित प्रति 'चणकरनाथ वाक्यम्' संस्कृत में प्राप्त है। ये हस्तलेख 18वीं-19वीं शताब्दी के पूर्व के नहीं हैं। इन्हीं हस्तलिखित लेखों के आधार पर डॉ. द्विवेदी ने चुणकरनाथ की चार सबदियाँ प्रकाशित की हैं।

मल्लिकानाथः

महायोगी मल्लिकानाथ एक तान्त्रिक योगी थे। इन्हें गोरखनाथ का शिष्य बताया जाता है। इन्हें मल्लीनाथ के नाम से भी जाना जाता है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने बताया है कि मल्लीनाथ राव सलखा जी के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के बाद ये अपने चाचा कान्हड़देव के पास रहने लगे थे। संवत् 1413 में ये महोबा के स्वामी बने। इन्हें सिद्ध पुरुष भी बताया जाता है। तलवाड़ा में लूनी नदी के तट पर इनका मन्दिर है। मल्लीनाथ का स्वर्गवास संवत् 1456 में हुआ था।[51] 'मल्लिकामकरन्द' से मल्लिकानाथ के जीवन के विषय में सूचना मिलती है। इस हस्तलेख के अनुसार मल्लिकानाथ नीवार देश के एक क्षत्रिय योद्धा थे। इस रूप में आपका नाम विवुधेन्द्रमल्ल था। सिद्धि-प्राप्ति के पश्चात वे विश्वनाथ नाम से विख्यात हुए। गुरु के आदेशानुसार उड्डीयान में उन्होंने एक ब्राह्मण कन्या के साथ भैरवी चक्र के अन्तर्गत शैव विवाह किया और उसका नाम मल्लिका रखा। अतः उन्हें मल्लिकानाथ के नाम से ख्याति मिली।

बालकनाथ (बालनाथ):

नाथपन्थ के महान् योगाचार्यों में महायोगी बालनाथ का नाम महिमामण्डित एवं स्मरणीय है। इनका एक दूसरा नाम 'लक्ष्मणनाथ' भी बताया जाता है। जिला जेहलम (झेलम), जो अब पाकिस्तान में है, वहाँ एक छोटी सी पहाड़ी है। उस पहाड़ी को पंजाब के लोग टिल्ले के नाम से पुकारते हैं। यह टिल्ला बालनाथ सिद्ध की पुण्य तपस्थली रहा है। लक्ष्मणनाथ ने हेठनाथी पन्थ चलाया। अम्बाला के हेठ तथा करनाल के बाल इसी पन्थ के अनुयायी हैं। डॉ. वासुदेव सिंह ने बालकनाथ को 13वीं शताब्दी का होना अनुमानित किया है।

पृथ्वीनाथः

इनका काल 16वीं विक्रमी संवत् प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त 'सबदी' शीर्षक से कुछ रचनाएँ भी इनकी मिलती हैं। इनका विषय सम्प्रदायिक ही है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कबीर और नामदेव का भी स्मरण किया है। जोधपुर से प्रकाशित एक ग्रन्थ 'शिष्याबोध' नाम से है जिसमें 16 सबदियाँ और 4 पद संगृहीत हैं। यहीं 'पृथ्वीनाथ संहिता' नामक एक ग्रन्थ भी है।

नाथ सम्प्रदाय के परवर्ती इतिहास का अवलोकन करें तो अनेक ऐसे सिद्ध पुरुष हुए हैं जिन्हें हम नाथ परम्परा के क्रमिक विकास का एक अभिन्न अंग मान सकते हैं। विकास की इस दिशा में उस मार्ग में युगानुकूल संशोधन एवं संवर्द्धन स्वाभाविक था। गोरक्षनाथ की परम्परा के ही सन्त ज्ञानेश्वर भी हैं, पर यहाँ तक आते-आते नाथ सम्प्रदाय की मान्यताओं में किंचित् परिवर्तन आ ही जाता है। सन्त ज्ञानेश्वर से पूर्व गहिनीनाथ ने नाथ योग साधना में कृष्ण-भक्ति का भी समावेश कर दिया था। अतः मात्र इसी कारण से उन्हें नाथपन्थ से अलग नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त नाथ

सिद्धों के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में यद्यपि अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, परन्तु यथावसर इनके विषय में अन्य तथ्य प्राप्त होते हैं तो उस पर विचार किया जा सकता है।

सन्दर्भः

1. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, पृष्ठ-11, सम्पादक- गोपीनाथ कविराज; गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस 1925, सरस्वती भवन, टेक्स्ट्स नं. 18, शक्तिसंगमतंत्र-

   श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथ, ब्रह्मानुबोधनात्।

   स्थगिताज्ञान विभवात् श्रीनाथ इति गीयते।।
2. तत्रैव, पृ. 49-57
3. गोरखबानी, सम्पादक और टीकाकार- डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2003
4. तत्रैव, पृ. 4, 5, 45, 61
5. गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज; जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स, जी.एम.सी.ए. पब्लिशिंग हाउस, 5-रसेल स्ट्रीट, कलकत्ता, हंफ्री मिलफोर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन 1938, पृ. 33
6. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ- प्रधान सं. डॉ. भगवती प्रसाद सिंह, गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर, 1972, पृ. 290-91
7. सिद्ध साहित्य - डॉ. धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, 1955, पृ. 99
8. बौद्ध दर्शन - पं. बलदेव उपाध्याय, पृ. 432
9. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ - परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 54-55
10. बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक - पं. परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 127-128
11. नाथ सम्प्रदायः उदय व विस्तार - प्र. म. जोशी, पृ. 190
12. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ - परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 54-55
13. हठयोग प्रदीपिका- स्वात्माराम योगीन्द्र विरचिता, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, सं. 2009
14. महाराष्ट्र के नाथपन्थी कवियों का हिन्दी काव्य - डॉ. अ.प्र. कामत, पृ. 26-27
15. सिद्ध साहित्य - डॉ. धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, 1955, पृ. 324
16. स्कन्दपुराण 'केदारखण्ड', अध्याय-74, पृ. 82
17. नाथ सम्प्रदायः उदय व विस्तार - प्र. म. जोशी, पृ. 178
18. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, सम्पादक- गोपीनाथ कविराज; गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस 1925, सरस्वती भवन, टेक्स्ट्स नं. 18, प्रस्तावना
19. नाथ सम्प्रदाय; डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1950
20. गोरख विशेषांक- अंक-1, पृ. 119
21. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ - परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 56-57
22. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, सम्पादक- गोपीनाथ कविराज; गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस 1925, सरस्वती भवन, टेक्स्ट्स नं. 18
23. नाथ सम्प्रदाय - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 28, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1950

24. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - आचार्य विनयमोहन शर्मा, पृ. 63-64, प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, मार्च-1957
25. महाकाल संहिता - गृह्यकालीन खण्ड प्रथमोभाग - प्रस्तावना, पृ. 3-5
26. गोरख विशेषांक - अंकन, पृ. 91-95
27. कदलीमंजु माहात्म्य - अध्याय 14-15 पृ. 63-83-119
28. योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ - पृ. 18-19, चन्द्रनाथ योगी, अहमदाबाद, 1924
29. हिन्दी साहित्य - डॉ. श्यामसुन्दर दास, पृ. 134-135
30. महाराष्ट्र के नाथपन्थीय कवियों का हिन्दी काव्य - डॉ. कामत, पृ. 78-79
31. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास दर्शन और साधना प्रणाली-कल्याणी मल्लिक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1950,पृ. 32-74
32. नाथ सम्प्रदाय-उदय व विस्तार - डॉ. प्र.न. जोशी, पृ. 265
33. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास दर्शन और साधना प्रणाली-कल्याणी मल्लिक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1950,पृ. 34-35
34. नाथ सम्प्रदाय - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 90, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1950
35. योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ - पृ. 86-92
36. गोरखनाथ और उनका युग - रांगेय राघव, पृ. 3, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6, 1963
37. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास दर्शन और साधना प्रणाली - कल्याणी मल्लिक, पृ. 77-79
38. योगवाणी अंक 10, पृ. 27-28
39. उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास - डॉ. विष्णुदत्त राकेश, पृ. 58
40. नाथ सम्प्रदाय - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 68-69, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1950
41. नाथ सिद्धों की बानियाँ - सं. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 21, प्रधान सम्पादक- रुद्रकाशिकेय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण
42. गोरखनाथ और उनका युग - रांगेय राघव, पृ. 26, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6, 1963
43. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली-कल्याणी मल्लिक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1950, पृ.75
44. गोरखनाथ और उनका युग - रांगेय राघव, पृ. 17, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6, 1963
45. योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ - पृ. 99-115, चन्द्रनाथ योगी, अहमदाबाद, 1924
46. उत्तर भारत के निर्गुण पन्थ साहित्य का इतिहास - डॉ. विष्णुदत्त राकेश, पृ. 59
47. योगवाणी, वर्ष-2000 मार्च, अंक 1-3, पृ. 106
48. नाथ सम्प्रदाय - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 57
49. गोरखनाथ और उनका युग - रांगेय राघव, पृ. 24
50. महाराष्ट्र के नाथपन्थीय कवियों का हिन्दी काव्य - डॉ. अशोक प्रभाकर कामत, पृ. 33-39
51. योगवाणी-2000, अंक-1-3, पृ. 176-177

गुरु श्री गोरक्षनाथ शोध एवं अध्ययन केन्द्र

महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर